अगस्त 2020

दादावाणी

Retail Price ₹ 15

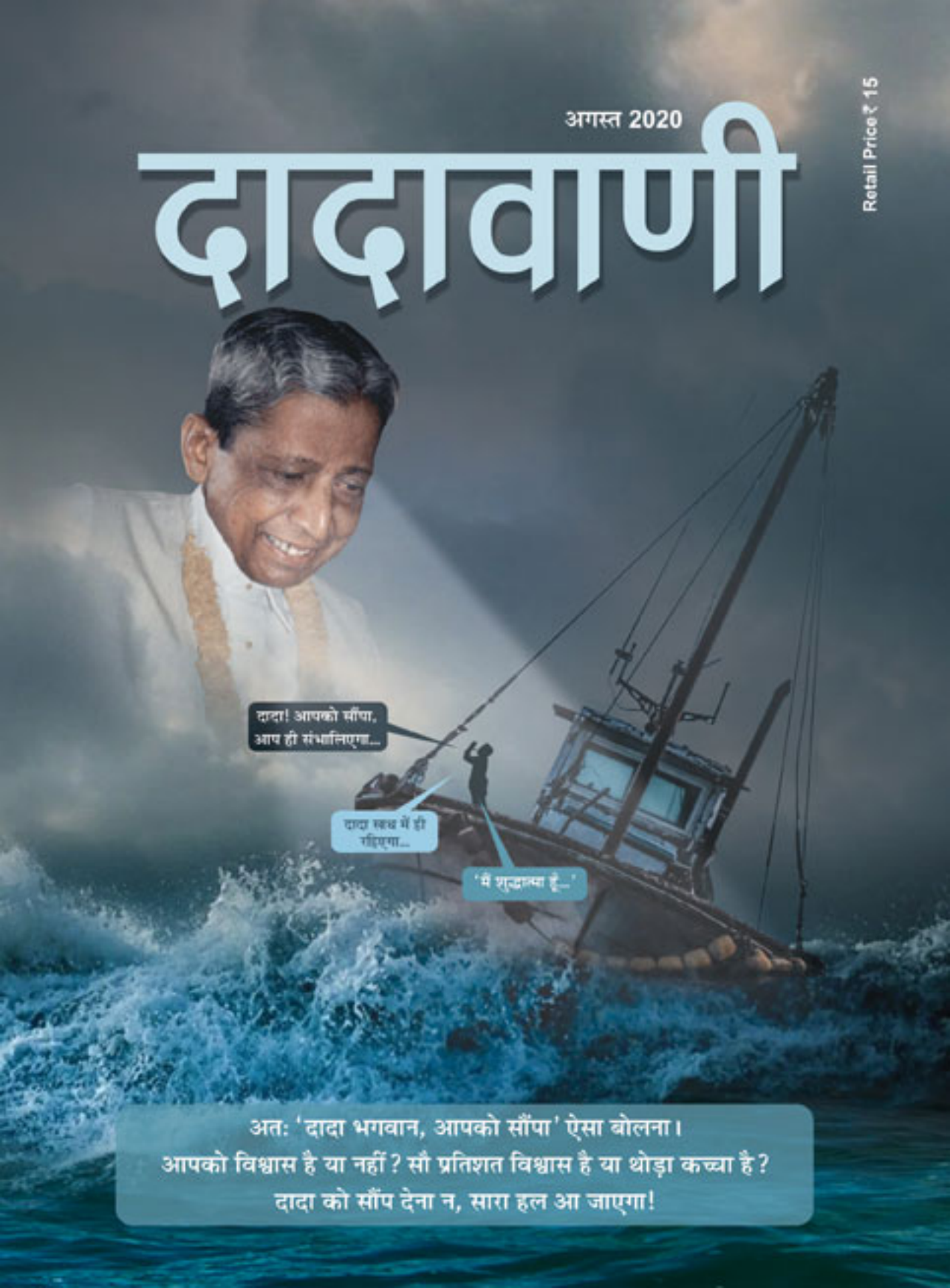

अतः 'दादा भगवान, आपको सौंपा' ऐसा बोलना।
आपको विश्वास है या नहीं? सौ प्रतिशत विश्वास है या थोड़ा कच्चा है?
दादा को सौंप देना न, सारा हल आ जाएगा!

अड़ालज : जर्मनी ऑनलाइन शिविर : दि. 26 से 28 जून 2020

अड़ालज : गुरुपूर्णिमा महोत्सव : दि. 1 से 5 जुलाई 2020

अड़ालज : नीरू माँ के ज्ञान दिवस का उत्सव : दि. 8 जुलाई 2020

वर्ष : 15 अंक : 10
अखंड क्रमांक : 178
अगस्त 2020
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2020
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Offset
B-99, GIDC, Sector-25,
Gandhinagar – 382025.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज,**
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन: (079) 39830100
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
15 साल
भारत : 1500 रुपये
यू.एस.ए. : 150 डॉलर
यू.के. : 120 पाउन्ड
वार्षिक
भारत : 150 रुपये
यू.एस.ए. : 15 डॉलर
यू.के. : 12 पाउन्ड
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से
संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

दादा के आश्रित होकर, पार कर लेंगे यह संसार!

संपादकीय

वर्तमान में, कलियुग के पंचम आरे में, संसार अर्थात् कुदरती रूप से उत्पन्न हुआ पज़ल, जहाँ मनुष्य लगातार आधी-व्याधि-उपाधि की पज़ल में उलझे हुए हैं, हर पल कठिनाइयाँ अनुभव कर रहे हैं। रोग संक्रमण की परेशानियाँ, नौकरी की असुरक्षा, अनिश्चितता, महँगाई, बेकारी, व्यापार में नुकसान, आर्थिक व सामाजिक विडंबनाएँ, असफलता, आक्रोश, हताशा और डिप्रेशन सोते-उठते-बैठते, चारों तरफ कर्मों के तूफान से जूझ रहे हैं।

इस क्रियाकारी अक्रम विज्ञान द्वारा महात्मा ज्ञान सहित आगे बढ़ ही रहे हैं। परंतु इस ज्ञान को पुष्टि मिले, उस हेतु से इस अंक में, वर्तमान में उत्पन्न हुई महामारी की वजह से रोज़मर्रा के जीवन में दिखाई देती, विविध प्रकार की मुश्किल परिस्थितियों में जैसे कि टेन्शन, चिंता, भय, परेशानी, आर्थिक मंदी की उलझनें, असफलता, मानसिक दु:ख, भग्न होता अहंकार, डिप्रेशन, आत्महत्या के विचार वगैरह के सामने ज्ञान का आधार मज़बूत हों और समता में रह पाए, उस हेतु से परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के उद्बोधन का संकलन हुआ है।

दादाश्री कहते हैं कि ऐसा मनुष्यपन किस काम का? मनुष्यपन निडर होना चाहिए। दुनिया में कोई भी चीज़ हिला न सके, ऐसा होना चाहिए। यह संसार भय का संग्रहस्थान है लेकिन जब तक अज्ञान दशा है तब तक। खुद यदि ज्ञान दशा में आ गया तो भय उसे छू ही नहीं सकेगा। दादाश्री हर इंसान को ऐसा निर्भय बनाना चाहते हैं कि इस संसार में आप क्यों घबराते हो? यू आर होल एन्ड सोल रिस्पॉन्सिबल फॉर योर सेल्फ। आपके गुनाह भुगत लो, फिर भय व चिंता जैसी कोई चीज़ रहेगी ही नहीं।

किसी भी प्रकार के विपरीत संयोगों में 'दादा आपको सौंप दिया', ऐसा बोलेंगे तो सारा हल आ जाएगा! 'दादा' तो संपूर्ण सुखिया, इसलिए उनकी शरण लेने के बाद चारों तरफ से रक्षण मिलता है। जो पूर्ण स्वरूप हैं, अनंत सुख के धाम हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार का स्वार्थ नहीं है, कोई इच्छा नहीं रही, वहाँ पर जाएँ और उनकी शरण लें तो फिर पूर्ण हो ही जाएँगे।

संसार में मुश्किलें तो आती ही रहेंगी, मुश्किलों के बिना जो समय बीते ही नहीं, वही दूषमकाल। ऐसे समय में दादाश्री व्यवहार में पॉज़िटिव दृष्टि रखकर, साथ ही निश्चय की शुद्ध दृष्टि से अलग-अलग कठिन संयोगों में निर्भयता के पाठ पढ़ाते हैं। प्रस्तुत संकलन में दादाश्री, महात्माओं में आत्मा की खुमारी के साथ-साथ, ग़ज़ब का ज्ञान बल भरते हुए कहते हैं कि 'महात्माओं शूरवीरता फैलाना', जितने कष्ट आने हों उतने आना, दादाई बैंक खुला है। अब, आ पड़े प्रत्येक डिस्चार्ज कर्म के सामने ज्ञान का उपयोग करके व्यवहार का समभाव से निकाल हो जाए और मोक्ष पंथ की क्षपक श्रेणियाँ चढ़ सकें, यही हृदय की भावना।

- जय सच्चिदानंद

दादा के आश्रित होकर, पार कर लेंगे यह संसार!

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

टेन्शन व चिंता छूटे ज्ञान की समझ से

संसार फँसा है त्रिविध ताप में

सारा संसार त्रिविध ताप से सुलग रहा है। अरे! पेट्रोल की अग्नि से धूँ-धूँ जल रहा है। वे तीन ताप कौन से? आधि, व्याधि और उपाधि।

पेट में दुखता हो उसका नाम व्याधि। भूख लगे उसका नाम व्याधि। आँखें दुखती हों वह व्याधि। शारीरिक दु:ख व्याधि कहलाते हैं।

मानसिक दु:ख आधि कहलाते हैं। सारा दिन चिंता करते रहें, वह आधि। और बाहर से आ धमके वह उपाधि है। इस समय यहाँ बैठे हैं और कोई पत्थर मारे वह उपाधि। कोई हमें बुलाने आया वह उपाधि। उपाधि बाहर से आती है, वह अंदर से नहीं होती।

सारा संसार, फिर चाहे वह साधु हो या संन्यासी हो तो भी त्रिविध ताप से सुलग रहे हैं।

पूरी दुनिया ऐसे भुन रही है जैसे शक्करकंद को भट्ठी में भूनते हैं। फॉरेन वाले भी भुन रहे हैं और यहाँ वाले भी भुन रहे हैं। 'शक्करकंद भुन रहे हैं' ऐसा किसी से कहा तब वह कहने लगा, 'दादा, कहते हैं शक्करकंद सिक रहे हैं, लेकिन अब तो जलने भी लगे हैं। जो पानी था वह खत्म हो गया और अब शक्करकंद जलने लगे हैं।' यानी ऐसी दशा है!

प्रश्नकर्ता : हाँ, घुटन में ही जी रहे हैं।

दादाश्री : नहीं जीएँ तो क्या करें? कहाँ जाएँ वे? यह जीना भी अनिवार्य है फिर और मरने की भी किसी के हाथ में सत्ता नहीं है। मरने जाएँगे, तब पता चलेगा। पुलिस वाला पकड़कर केस करेगा। जैसे जेल में गए हुए व्यक्ति को मज़बूरन सबकुछ करना पड़ता है न, वैसे ही यह जीना भी अनिवार्य है, पैसा भी अनिवार्य है।

ऐसा विचित्र है यह काल। मनुष्य बेचारे बिदके हुए घोड़ों जैसे हैं। घबराहट बैठ गई है कि 'क्या होगा, क्या होगा?' तेरा कोई बाप भी *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं है, वहाँ क्या हो जाएगा फिर? इतनी हिम्मत देन वाला कोई मिले, तो भी हिम्मत आ जाएगी न? मैंने तो क्या कहा है कि तेरा *ऊपरी* कोई नहीं है। तुझमें दखल करन वाला भी कोई नहीं है, और यह परमानेन्ट बात डिसाइडेडपूर्वक कह रहा हूँ। कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है, आप ही हो। *ऊपरी,* आपके ब्लंडर्स और मिस्टेक्स दो ही हैं। ब्लंडर्स तो, जब 'ज्ञानी पुरुष' तोड़ देंगे तो टूटेंगे। उसके बाद भूलें निकल जाएँगी। नहीं तो ब्लंडर्स निकल सकें ऐसे नहीं हैं। खुद फँसा हुआ है, वह खुद से निकल पाए, ऐसा नहीं है।

शुद्धात्मा पद में नहीं है चिंता, है मात्र समाधि

प्रश्नकर्त्ता : दिमाग़ पर आजकल टेन्शन रहा करता है।

दादाश्री : टेन्शन में सभी तरह के तनाव रहते हैं। नौकरी का ठिकाना नहीं तो क्या होगा? एक तरफ बीवी बीमार है, उसका क्या होगा? लड़का ठीक से स्कूल नहीं जाता, उसका क्या? इन सभी तनावों को टेन्शन कहते हैं। टेन्शन होने से दिमाग़ बिगड़ जाता है। कभी न कभी तो टेन्शन रहित होना है।

प्रश्नकर्त्ता : अंदर ऐसा पता चलता है कि यह गलत हो रहा है, दिमाग़ पर गलत टेन्शन है, इससे तबीयत ज़्यादा बिगड़ेगी। ऐसी जागृति रहा करती है लेकिन फिर वापस कन्टिनयुिअस (निरंतर) रहता है।

दादाश्री : तुम्हारी बुद्धि ज़रा ज़्यादा काम करती है, इसलिए हम तुमसे कहते हैं, बहुत सावधान रहने जैसा है। यह टेन्शन तो खत्म कर देता है। ऐसा ज्ञान मिला है, वह भी फिर चला जाएगा। फिर वापस कहीं ताल नहीं बैठेगा।

टेन्शन मनुष्य को खत्म कर देता है और यदि यह ज्ञान न हो तो टेन्शन ही है सारा। संसार व्यथित ही है न!

अर्थात् सिर्फ समझने की ज़रूरत है। भूतकाल तो चला गया, अत: वर्तमान में रहना चाहिए। वर्तमान में रहा जा सकता है या नहीं? हम वर्तमान में ही रहते हैं। इसलिए लोग कहते हैं 'दादा, आप टेन्शन रहित हैं!' मैं कहूँ, 'कैसा टेन्शन, भाई!' वर्तमान में रहें तो टेन्शन होता होगा? टेन्शन तो उन्हें होता है जो भूतकाल में खो जाते हैं। जो भविष्य के लिए पागलपन करें उन्हें होता है, हमें क्या टेन्शन? और मैंने आपको वही पद दिया है।

हमने जिन्हें ज्ञान दिया है, उन्हें तो निरंतर समाधि रहती है। जिन्हें शुद्धात्मा पद प्राप्त है, जो निरंतर स्वरूप में ही रहते हैं, उन्हें हर अवस्था में समाधि रहती है। क्योंकि वे तो प्रत्येक अवस्था को 'देखते' हैं और 'जानते' हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है, फिर भी चिंता में और सिर्फ चिंता में ही डूबा हुआ रहता हूँ।

दादाश्री : तो उसका हल तो लाना पड़ेगा न? इन रोंग बिलीफों को कब तक पकड़कर रखोगे? अब अगर वरीज़ चखी हों न, तभी वास्तव में इस जगत् का स्वाद पता चलता है, वर्ना तब तक इस जगत् का स्वाद समझ में नहीं आता। निरी वरीज़, वरीज़, वरीज़! जैसे मछलियाँ तेल में तली जाती हैं वैसी छटपटाहट हो रही है! इसे लाइफ कैसे कहेंगे?

एब्नॉर्मल विचारों को दूर रहकर देखना है

यानी ऐसा कहा है कि चिंता क्यों करते हो बेवजह? आपको तो सिर्फ क्या करना है? सहज भाव से विचार करना है। और विचार यदि एब्नॉर्मल हो जाएँ तो उसे कहेंगे, चिंता हो गई। विचार में एब्नॉर्मल हुआ तो चिंता हो गई, वहाँ आपको बंद कर देना है, क्लोज (बंद) कर देना है। जैसे कि तेज़ तूफान आने पर हम दरवाज़े क्लोज (बंद) कर देते हैं न, उसी तरह जब अंदर विचार एब्नॉर्मली आगे जाने लगे तो बंद कर देना चाहिए। वर्ना, फिर वे चिंता का रूप ले लेंगे। फिर तरह-तरह के भय दिखाएँगे और तरह-तरह का दिखाएँगे। अत: उस दिशा में जाना ही नहीं। अपनी ज़रूरत मुताबिक विचार, बाकी बंद।

प्रश्नकर्त्ता : विचार बंद करने की सत्ता है क्या?

दादाश्री : है न! सब कुछ है। क्योंकि विचार तो आते ही रहते हैं। हम इस तरफ देखें, तो वे उस तरफ से आते रहते हैं। हम अपनी दृष्टि उस तरफ बदल लें तो फिर हमें क्या लेना देना? सभी प्रकार की सत्ता है। यदि नल बंद

नहीं हो रहा हो तो हमें दूसरी तरफ देखने लगना है, यानी नल बंद ही हो गया न! जब तक उसे देखते रहेंगे तब तक ऐसा ही लगेगा कि नल चल रहा है। अर्थात् हम तो ज्ञाता-द्रष्टा हो गए इसलिए हम में तो मन होता ही नहीं न! मन तो ज्ञेय है। वह चाहे जैसे फूटे।

यह कैसा है कि यदि आप अन्य किसी के घर में घुस जाएँ तो मन में घबराहट होती है कि नहीं? होती ही है। 'अभी कोई निकाल बाहर करेगा, धमकाएगा', ऐसा भय निरंतर ही रहता है। पर यदि अपने ही घर में बैठे हैं, तो है कोई चिंता? शांति ही होगी न, अपने घर में तो? वैसा ही है यह। 'चंदूलाल', आपका घर नहीं हो सकता। आप खुद क्षेत्रज्ञ पुरुष हैं और भ्राँति से पराये क्षेत्र में क्षेत्राकार हो गए हैं। 'पर' के स्वामी बन बैठे हैं और ऊपर से, पर के भोक्ता बन बैठे हैं। इसलिए निरंतर चिंता, उपाधि, आकुलता और व्याकुलता रहा करती है। पानी से बाहर निकाली गई मछली की तरह छटपटाहट, छटपटाहट रहती है।

खुद के हिसाब वाला जगत्, वहाँ कैसी चिंता?

सिर्फ बात ही समझनी है। आप भी परमात्मा हो, भगवान ही हो, फिर किसलिए वरिज़ करनी? चिंता किसलिए करते हो? एक क्षण भर के लिए भी चिंता करने जैसा यह संसार नहीं है।

भगवान कहते हैं कि चिंता करने वाले के लिए दो दंड हैं और चिंता नहीं करने वाले के लिए एक दंड है। अठारह साल का एकलौता जवान बेटा मर जाए तो उसके बाद जितनी चिंता करते हैं, जितना दु:ख मनाते हैं, सिर फोड़ते हैं, और जो कुछ भी करते हैं, उनको दो दंड हैं और जो ये सब नहीं करते, उनके लिए एक ही दंड है। बेटा मर गया, उतना ही दंड है और सिर फोड़ा, वह अतिरिक्त दंड है। हम ऐसे दो तरह के दंड में कभी भी नहीं आते। इसलिए मैंने इन लोगों से कहा है कि, ''पाँच हज़ार रुपये की जेब कट जाए तब 'व्यवस्थित' कहकर आगे निकल जाना और चैन से घर चले जाना।''

यह एक दंड तो अपना खुद का ही हिसाब है। इसलिए घबराने का कोई कारण नहीं है। इसलिए मैंने 'व्यवस्थित' कहा है, एक्ज़ेक्ट 'व्यवस्थित' है। इसलिए, जो हो चुका है उसे तो 'ठीक है, करेक्ट है', ऐसा ही कहना।

शारीरिक व मानसिक रोगों के सामने ज्ञान की समझ

रोग में पुण्य-पाप का रोल...

प्रश्नकर्ता : अभी मनुष्य को रोग होते हैं, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : वह उसने खुद ने गुनाह किए हैं सारे, पाप किए हैं, उससे ये रोग होते हैं।

प्रश्नकर्ता : पर इन छोटे-छोटे बच्चों ने कौन-सा गुनाह किया था?

दादाश्री : सभी ने पाप किए थे, उसके ये रोग हैं सारे। पूर्व जन्म में जो पाप किए हुए हैं, उनका फल आया इस समय। छोटे बच्चे दु:ख भुगतते हैं, वह सब पाप का फल और शांति व आनंद भुगतते हैं, वह पुण्य का फल। पाप और पुण्य, दोनों के फल मिलते हैं। पुण्य, वह क्रेडिट है और पाप, वह डेबिट है।

प्रश्नकर्ता : हमें अभी इस जन्म में कोई बीमारी हो, रोग हो जाए तो वह हमारे पिछले जन्म के कर्मों का फल है, तो फिर यदि अभी हम कोई भी दवाई लें तो वह हमें कैसे ठीक करती है, तो फिर वह भी व्यवस्थित ही है?

दादाश्री : दवाई लेते हो, वह भी यदि

व्यवस्थित होगा तभी ले पाओगे, वर्ना ली ही नहीं जा सकती। वर्ना मिलेगी ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : कितनी प्रकार की दवाईयाँ लें, तो भी दवाई उसे असर नहीं करती, ठीक नहीं होता उससे। ऐसा भी होता है न, दादा।

दादाश्री : बल्कि पैसे कम पड़ जाते हैं और मरना पड़ता है। जबकि पुण्य उदय होने पर सहज रूप से यों ही बात-बात में टमाटर का रस पीने से भी ठीक हो जाता है। इसीलिए पुण्य पर आधारित है। आपका पुण्य, फल देने के लिए तैयार हो जाए तो सब ऐसे ही 'फ्री ऑफ कॉस्ट' मिल जाता है और पाप, फल देने के लिए तैयार हो जाए तो अच्छी चीज़ हो, वह भी उल्टी पड़ जाती है।

बीमारी में पुण्य से भुगतना कम हो जाता है। बीमारी में पाप से भुगतना बढ़ जाता है। पुण्य नहीं हो तो पूरा ही भुगतना पड़ता है।

अब पुण्य हो तो वैद्यराज अच्छे मिल जाते हैं, टाइम आ मिलता है। सब मिल जाता है और शांति रहती है। डॉक्टर ने दर्द मिटाया? पुण्य ने मिटा दिया और पाप से खड़ा हुआ था। तब दूसरा कौन मिटाएगा? डॉक्टर निमित्त है!

प्रश्नकर्ता : मेरी माताजी अभी ही दो महीने पहले कैन्सर के कारण गुज़र गई।

दादाश्री : वह तो सारा पापकर्म के उदय से होता है। जब पापकर्म का उदय हो तब (रोग) होता है। यह सारा हार्ट अटैक और (कैन्सर) वगैरह पापकर्म से होते हैं। निरे पाप ही बाँधे हैं, इस काल के जीवों का धंधा ही यह है, पूरा दिन पापकर्म ही करते रहते हैं, भान नहीं है इसलिए। यदि भान होता तो ऐसा नहीं करते!

प्रश्नकर्ता : उन्होंने पूरी ज़िंदगी भक्ति की थी, तो उन्हें कैन्सर क्यों हुआ?

दादाश्री : भक्ति की है, उसका फल तो अभी बाद में आएगा। अगले जन्म में मिलेगा। पिछले जन्म का फल आज मिला है और अगर आज आप अच्छे गेहूँ बो रहे हो, तो अगले जन्म में आपको गेहूँ मिलेंगे।

'व्याधि', वह औरों को दुःख देने का परिणाम

प्रश्नकर्ता : हम जो शरीर के सुख-दुःख भुगतते हैं, वह व्याधि हो या चाहे कुछ भी आए, वे पूर्व के किस प्रकार के कर्मों के परिणाम होते हैं?

दादाश्री : इसमें तो ऐसा है, कितने ही लोग नासमझी में बिल्ली को मार देते हैं, कुत्ते को मार देते हैं, बहुत दुःख देते हैं, परेशान करते हैं। वे जब दुःख देते हैं, उस क्षण तब उसे खुद को भान नहीं रहता कि इसकी क्या जोखिमदारी आएगी? बिल्ली के छोटे बच्चे को मार देते हैं, कुत्ते के बच्चे को मार देते हैं और दूसरा, ये डॉक्टर मेंढक काटते हैं, तो उसके प्रतिस्पंदन उनके खुद के शरीर पर पड़ेंगे। जो आप कर रहे हो, उसी के प्रतिस्पंदन आएँगे। प्रतिस्पंदन हैं ये सारे।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् किसी के शरीर के साथ की गई छेड़खानी के प्रतिस्पंदन आते हैं?

दादाश्री : हाँ, वही। किसी जीव को किंचित्मात्र दुःख दिया जाए तो वह आपके ही शरीर पर आएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी उसने जब यह सब किया होगा, जीवों को चीरा होगा तो उस समय वह अज्ञान दशा में होता है न! उसे ऐसा बैरभाव भी नहीं होता, फिर भी उसे भुगतना पड़ता है?

दादाश्री : भूल से, अज्ञान दशा में अंगारों पर हाथ पड़ता है न, तो अंगारे फल देते ही हैं। यानी कोई छोड़ता नहीं है। अज्ञान या सज्ञान, अनजाने में या जान-बूझकर, भुगतने का तरीका

अलग होता है। बाकी, कोई छोड़ता नहीं! ये सभी लोग दु:ख भुगत रहे हैं, वह उनका खुद का ही हिसाब है सारा। इसलिए भगवान ने कहा है कि मन-वचन-काया से अहिंसा का पालन कर। ऐसा कर कि किसी जीव को किंचित्मात्र भी दु:ख न हो, यदि तुझे सुखी होना हो तो!

प्रश्नकर्ता : कर्म के कारण रोग होते हैं, तो दवाई से कैसे ठीक हो जाते हैं?

दादाश्री : हाँ। उन रोगों में वे पाप ही किए हुए हैं न, वे पाप नासमझी से किए थे, इसलिए दवाईयों से मदद मिल जाती है और हेल्प हो जाती है। जान-बूझकर किए गए हों तो उन्हें दवाई-ववाई कुछ नहीं मिल पाती। दवाई मिलती ही नहीं है। नासमझी से करने वाले लोग हैं बेचारे! नासमझी से किया हुआ पाप छोड़ता नहीं है और जान-बूझकर करने वाले को भी नहीं छोड़ता। लेकिन नासमझी वाले को कुछ मदद मिल जाती है और जान-बूझकर करने वाले को नहीं मिलती।

शास्त्रकारों ने कहा है कि समझ है फिर भी उसका लाभ नहीं उठा सकता, तो उसका क्या हो सकता है? तो कहते हैं, नासमझी से काम किए हैं, नासमझी से पुण्य किए हैं, उन्हें भोगते समय नासमझी ही रहती है।

प्रश्नकर्त्ता : दादा, ज़रा विस्तारपूर्वक समझाइए।

दादाश्री : नासमझी से पुण्य के काम किए हों, तो उनका फल भोगते समय नासमझी ही रहती है। और यदि जान-बूझकर पाप किए हों तो उन पापकर्म को भी जान-बूझकर ही भुगतने पड़ते हैं। अत: इस आधार पर वेदनीय है, वह थोड़ा परेशान करती है। वह किसे? चंदूभाई को। उनका और हमारा कोई लेन-देन नहीं है। हमें तो अंदर से आत्मा क्या कहता है? 'ऐसा न हो, ऐसा नहीं होना चाहिए', यह वीतराग। वह अपना स्वरूप। जबकि पहले, 'ऐसा होना चाहिए, ठीक ही है, यह ठीक ही है।' पहले जिसे पुष्टि देते थे, वहीं पर अब हम अलग रहते हैं।

वेदना पड़ोसी को, 'मुझे' नहीं

प्रश्नकर्त्ता : जो भी महात्मा ज्ञान लेते हैं, उन्हें ही पहले के परिषह और उपसर्ग क्यों आते हैं?

दादाश्री : फिर क्या हो सकता है? बंद हो जाने चाहिए? उन्हें वेदना कम होती है। सौ मन का गोला लगना हो उसके बजाय एक कंकड़ लगता है लेकिन असर हुए बगैर तो रहेगा नहीं। निमित्त छोड़ेगा नहीं न!

महावीर भगवान से पूछा, 'साहब, जब देवताओं ने आपकी परीक्षा ली, तब आपको परेशानी नहीं हुई?' तब भगवान ने क्या कहा? कहा कि '*ज्ञानी वेदे धैर्य थी, अज्ञानी वेदे रोई*।'

प्रश्नकर्त्ता : ज्ञानी वेदते हैं धैर्य से, लेकिन वे वेदते तो हैं न?

दादाश्री : वेदना तो जाती ही नहीं है, लेकिन वे धैर्य से वेदते हैं। धैर्य से अर्थात् सभी में अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार धीरज होता है। वैसे तो महावीर भगवान केवल जानते ही थे। जब खटमल उन्हें काटते, तब उसे खुद जानते थे, इतना ही। वेदते नहीं थे। जितना अज्ञान भाव, उतना वेदते हैं।

आपको यह ज्ञान तो पूरा हो चुका है लेकिन श्रद्धा से शुद्धात्मा हुए हो। अभी तो, जब ज्ञान से आत्मा बन जाओगे तब सिर्फ जानने को ही रहेगा, तब तक वेदना तो है। वेदने में तो हम आपसे कहते हैं न, कि अलग बैठना। अपने 'होम डिपार्टमेन्ट' (आत्म विभाग) में से इधर-

उधर नहीं होना। चाहे कोई कितनी भी घंटियाँ बजाएँ तो भी होम डिपार्टमेन्ट नहीं छोड़ना। भले ही घंटियाँ बजाएँ, बारह सौ घंटियाँ बजाएँ फिर भी हम क्यों अपना ऑफिस छोड़ें?

प्रश्नकर्त्ता : लेकिन उसमें वेदना अधिक होती है।

दादाश्री : वेदना बिल्कुल होती ही नहीं है। वेदना होती है, उसका कारण यह है कि आप चंदूभाई बन जाते हो। वैसा (चंदूभाई) नहीं बनना है आपको। चंदूभाई को जो वेदना होती है, उसे आप देखते रहो तो वेदना बंद हो जाएगी।

प्रश्नकर्त्ता : उस वेदना को देखते हैं इसीलिए ऐसा होता है कि चंदूभाई को वेदना क्यों होती है?

दादाश्री : चंदूभाई को वेदना होनी ही चाहिए। क्योंकि खुद ने इस वेदना के कारणों का सेवन किया था। इसलिए कारण में से कार्य-फल देता है। वह होनी ही चाहिए। आपको उनसे कहना होगा कि, 'चंदूभाई को होनी ही चाहिए।' 'क्यों हो रहा है' ऐसा कहता है, तो वह कोई हमारा *ऊपरी* नहीं है या किसी ने सेट नहीं किया। यदि किसी का दखल हो तभी हमें कहना है कि 'क्यों हो रहा है?' तब हमें कहना है, 'चंदूभाई, आप इसी लायक हो'।

अब, यदि आप खुद ही यहाँ से स्लिप होकर 'वह' वेदना की वजह से उसमें एकाकार हो जाओ, तो वेदना का असर ज़्यादा होगा। यदि ज़रा अलग रहोगे तो कम लगेगी। लेकिन आखिर में उसका निबेड़ा तो लाना ही पड़ेगा न?

आपको इतना ध्यान रखना है कि यह मैं चंदूभाई हूँ या शुद्धात्मा हूँ? फिर मैं कर्ता हूँ या व्यवस्थित कर्ता है? फिर आपको कुछ स्पर्श नहीं कर सकता। आपको बीज नहीं डलेगा। अभी तो कड़वे-मीठे फल भुगतने पड़ेंगे। कड़वा आए तो कड़वा भी भुगतना पड़ेगा और मीठा आए तो मीठा भी भोगना पड़ेगा।

अशाता वेदनीय में रहो फाइल-1 से जुदा

कभी चंदूभाई की तबीयत ठीक न हो, हाथ पैर दर्द कर रहे हो तो कहना, 'बोलो, अनंत सुख का धाम हूँ'।

शरीर में दर्द हो रहा हो और 'मैं अनंत सुख का धाम हूँ' बोलें तो आमने-सामने बैलेन्स होकर ठीक हो जाएगा। और जब भीतर मानसिक परेशानी हो रही हो, तो हम 'अनंत सुखधाम' बोलें कि भीतर सुख बरतने लगेगा।

जब तुम्हें अकुलाहट हो रही हो तब 'मैं अनंत सुखधाम हूँ, मैं अनंत सुखधाम ऐसा परमात्मा हूँ, मैं अनंत सुख का कंद हूँ', ऐसा बोलना। उससे सुख उत्पन्न होगा। खुद संपूर्णत: सुख स्वरूप परमानंदी है, वह नापसंद को 'मैं अनंत सुख वाला हूँ' कहकर पलट (बदल) देता है।

उसे जानते हो न, तो आप आत्मा हो। यह *पुद्गल* (जो पूरण-गलण होता है) ऐसा है, बंध (कर्म बंधन) ऐसा बंधा हुआ है। उससे हमें क्या नुकसान है? दादा का आशीर्वाद है और अगर *पुद्गल* खराब हो तब भी दादा चला लेते हैं, लेकिन आप क्यों सिर पर लेते हो? जब तक आप चंदूभाई थे तब तक तो सिर पर लेना पड़ता था। अब आप चंदूभाई नहीं हो तो आपको चंदूभाई का भार क्यों उठाना है? पड़ोसी के साथ तो हिसाब से होता है। वह रोए तो क्या आपको भी रोने लगना है? 'ये चंदूभाई ऐसे हैं', ऐसा जानो तो वही ज्ञान है!

यदि वह 'ज्ञान' में हो तो यह वेदना भुगत रहा है, वह कौन भुगत रहा है उसे हमें जानना चाहिए। और हम कौन हैं, वह जानना चाहिए।

अर्थात् आपको ऐसा कहना चाहिए कि 'चंदूभाई, आप ही भुगतो, भाई। अब, आपका किया हुआ है, वह भुगतो।' उसमें आप अलग रहो तो जुदापन का लाभ होगा। नहीं तो 'मुझ पर बहुत दुःख पड़ा' कहोगे तो खूब पड़ेगा ज़बरदस्त, अनेक गुना होकर पड़ेगा।

'मैं इससे अलग हूँ', ऐसी भावना करने से हल्का महसूस होगा और 'मुझे हो रहा है' कहोगे तो ज़्यादा लगेगा।

तू आत्मा है और यह *पुद्गल* है! तू डरा कि यह चढ़ बैठेगा। कहना, 'पूरी दुनिया इधर से उधर हो जाए, इस देह को बुखार आए या पक्षाघात हो जाए या जल जाए लेकिन जो डर जाए, वह कोई और'। यदि नुकसान होगा तो *पुद्गल* के घर, अपने घर कभी भी नुकसान नहीं हो सकता। दोनों का व्यवहार अलग है, व्यापार अलग। सेठ और दुकान अलग हैं या एक ही?

प्रश्नकर्ता : अलग-अलग।

दादाश्री : फिर भी, जब दुकान जलती है तब समझता है कि 'मैं जल गया'। अरे, तू कहाँ जल रहा है? दुकान जल रही है। चल, हम चाय पीते हैं। जबकि वह मानता है, 'मैं जल गया, मैं जल गया'। पराई चीज़ को सिर पर लेकर घूमता है।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसी कोई घटना घटती है, तब आर्तध्यान और रौद्रध्यान तो हो ही जाते हैं लेकिन फिर प्रतिक्रमण भी कर लेता हूँ।

दादाश्री : उसे आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं कहते। वे आर्तध्यान-रौद्रध्यान आपको नहीं होते। आप तो आत्मा हो, वह तो चंदूभाई को होते हैं। उसमें यदि चंदूभाई को ज़रा ज़्यादा हो जाए, तब कहना, 'भाई ज़रा धीरज से काम लो।' और इस तरह जब बातें होती हैं तब तेरी यह फाइल नं 1 सामने वाले व्यक्ति से जो बात करती है, उसे तू भी 'जानता' है और वह भी 'जानता' है कि, क्या बातचीत हुई। आप तो ज्ञाता-द्रष्टा व परमानंदी, आपका स्वभाव आप में।

चंदूभाई में समझदारी आए तो समझदारी को 'देखो', 'ओहोहो! बहुत समझदार है।' पागलपन आए तो पागलपन को 'देखो'। चकरा जाए तो चकराए हुए को 'देखो'। उसके अलावा और क्या होना है? आप बचपन में कभी इमोशनल (भावुक) हुए थे?

प्रश्नकर्ता : हुए थे। अभी भी हो जाते हैं लेकिन ज्ञान लेने के बाद कम हो गया है।

दादाश्री : हाँ। लेकिन ज्ञान लेने के बाद ज़िम्मेदारी आप पर नहीं है न! वह तो फिर चंदूभाई की ज़िम्मेदारी हुई न? तो 'आप' जुदा, 'चंदूभाई' जुदा। चंदूभाई इमोशनल हो जाते हैं, लेकिन आप तो नहीं होते न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कभी वापस एक हो जाता है और कभी अलग हो जाता है।

दादाश्री : एक हो जाता है, वह बात अलग है लेकिन वह तो है ही अलग। वे एक दिन वास्तव में अलग रहेंगे फिर। अभी बाकी के कमरे ठीक से खाली नहीं हुए हैं न! इसलिए अभी इकट्ठे रहना पड़ता है। जैसे-जैसे दूसरे कमरे खाली होते जाएँगे, वैसे-वैसे जुदापन होता जाएगा। क्योंकि (आप) जुदा हो चुके हो, इसलिए।

पुद्गल भय पौद्गलिक भूत हैं। उनसे हमें डरना नहीं है। इन्हें पौद्गलिक भूत कहा है। 'हमें' 'चंदूभाई' से कहना है, 'यों बनिए की तरह करोगे, तो नहीं चलेगा। क्षत्रिय बनो। और भी किसी दुःख को आना हो तो आए। चाहे पैर दुःखें, सिर दर्द करे', ऐसा कहना। वह *पुद्गल* है और हम आत्मा, अलग!

जितना आप ज्ञाता-द्रष्टा रहोगे, आपके इस पड़ोसी की जो स्थिति होगी, उसके जानने वाले हो। अर्थात् वह स्थिति, 'मुझे हो रहा है', ऐसा नहीं लगना चाहिए।

आपको सिर्फ, इस पड़ोसी का ध्यान रखना है। यदि पड़ोसी रोए तो आपको नहीं रोना है। पड़ोसी (की पीठ) पर हाथ फेर देना कि हम हैं न, आपके साथ।

जगत् के लोगों को मानसिक दुःख

भगवान महावीर को *शाता* (सुख परिणाम) वेदनीय और *अशाता* (दुःख परिणाम) वेदनीय होती थीं। कान में *बरु* (जंगली पौधे की नुकीली डंडी) डाले थे। उन्होंने कीलें नहीं ठोकी थीं लेकिन *बरु* डाले थे। तो वे उन्हें कितनी ज़्यादा *अशाता* वेदनीय देते होंगे? भगवान वेदक तो थे ही।

प्रश्नकर्ता : भगवान वेदक या भगवान का शरीर वेदक, दादा?

दादाश्री : भगवान भी वेदक। लेकिन डॉक्टर जिसे शरीर कहते हैं न, जितना भाग डॉक्टर देख सकते हैं न, फिज़िकल बॉडी, उसके लिए भी ज़िम्मेदार थे भगवान। उस वजह से वेदना होती थी।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वेदना होती है, इसका उन्हें पता भी चलता था लेकिन हम ऐसा तो नहीं कह सकते न कि उन्हें खुद को वेदना होती थी?

दादाश्री : असर होता था, लेकिन उस घड़ी उन्हें ज़बरदस्त तप रहता था। मानसिक वेदना नहीं होती थी उन्हें। वाणी की वेदना नहीं होती थी उन्हें।

प्रश्नकर्ता : यह जो शारीरिक वेदना है उसमें और मानसिक वेदना में क्या फर्क है?

दादाश्री : मानसिक वेदना ऐसी चीज़ है जो ज्ञान से खत्म हो सकती है और शारीरिक वेदना ऐसी नहीं है कि ज्ञान से खत्म हो जाए। दाढ़ दुःखने लगे तो उसका असर पहुँचता है अंत तक।

प्रश्नकर्ता : तो यह मानसिक वेदना किस तरह की वेदना होती है?

दादाश्री : पूरा जगत् मानसिक दुःखों में ही है न! इन लोगों को शारीरिक वेदना है ही नहीं। लोगों को मानसिक वेदना ही है और शारीरिक वेदना तो, अगर दाढ़ दुःखने लगे तो भगवान को भी पता चल जाता है लेकिन वे तप करते हैं। अंदर हृदय लाल-लाल हो जाता है। वह भी उन्हें खुद को दिखाई देता है।

पल भर के लिए भी सुख है ही नहीं शरीर में! मन तो दुःखदायी है, वह श्रद्धा बहुत अच्छी तरह से बैठ गई है और वाणी भी दुःखदायी है, वह श्रद्धा भी बहुत अच्छे से बैठ गई है लेकिन यह शरीर दुःखदायी है, वह श्रद्धा नहीं बैठी। यदि एयर कन्डिशन बंद हो जाए न, तो तुरंत पता चल जाता है या फिर अगर बाहर का वातावरण ठंडा हो गया हो और यह चलता रहे उस समय, तब कहेगा, 'अरे! बंद करो, बंद करो, मैं तो ठंड से ठिठुर गया।'

वास्तव में तो मानसिक दुःख ही ज़्यादा है! शरीर भी तो निरंतर दुःखदायी है, वह तो पुण्य के आधार पर यह सब मिल जाता है, इसलिए यह गाड़ी चलती है।

सत्संग से मिलती है मानसिक शांति

प्रश्नकर्त्ता : आजकल पेशेन्टों का कॉमन सवाल होता है कि मानसिक शांति किसमें मिलेगी?

दादाश्री : मानसिक शांति किसी में से भी नहीं मिलेगी मानसिक शांति मिलेगी ही कैसे इन लोगों को? अशांति ही ढूँढते हैं। वे खोज में है

अशांति की। यदि सहज भाव से रहेंगे तो शांति ही रहेगी। खाने के बाद यदि नींद आ रही हो तो सो जाते हैं थोड़ी देर के लिए। फिर सो गए तो चार घंटे तक सोते रहते हैं, इस तरह खुद ही अशांति करके सारा वातावरण बिगाड़ देते हैं। अहंकार करके बिगाड़ देते हैं यदि अहंकार थोड़ा नॉर्मल (सामान्य) होता न, तो यह दशा नहीं होती।

प्रश्नकर्त्ता : मन की अशांति को दूर करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मन क्यों अशांत हुआ है, वह कारण ढूँढ निकालना चाहिए आपको। उसका पता लगाना होगा या नहीं? कि शादी नहीं की, इसलिए अशांत हुआ है या पढ़े नहीं हैं इसलिए अशांत हुआ है, उसका कोई कारण तो ढूँढ निकालना होगा न?

मन की शांति तो इस सत्संग में बैठने से, सत्संग के दो शब्दों का आराधन करने से शांति तो हो जाती है, वर्ना यों ही शांति नहीं होती न!

आर्थिक उलझनों के सामने ज्ञान की समझ

वास्तव में दुःख किसे कहेंगे?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हमारे आर्थिक संयोग बदल गए हैं, वह? व्यापार की चिंता होती है, बहुत अड़चनें आती हैं।

दादाश्री : व्यापार के लिए सोचने की ज़रूरत है। लेकिन उससे आगे गए तो बिगड़ जाता है। व्यापार के बारे में दस-पंद्रह मिनट सोचना होता है, फिर उससे आगे जाओ और विचारों का चक्कर चलने लगे, वह 'नोर्मेलिटी' से बाहर गया कहलाता है, तब उसे छोड़ देना। व्यापार के विचार तो आते हैं, लेकिन उन विचारों में तन्मयाकार होकर वे विचार लम्बे चलें तो फिर उसका ध्यान उत्पन्न होता है और उससे चिंता होती है। वह बहुत नुकसान करती है।

(आर्थिक संयोगों में) बदलते रहते हैं। ये दिन के बाद रात आती है न? यह तो आज नौकरी नहीं है, लेकिन कल नई मिल जाएगी। दोनों बदल जाते हैं। कई बार आर्थिक दुःख होता ही नहीं। लेकिन उसे लोभ लगा होता है। कल सब्ज़ी के पैसे हैं या नहीं, इतना ही देख लेना होता है। उससे अधिक नहीं देखना होता। बोलो अब ऐसा दुःख है आपको?

प्रश्नकर्ता : ना!

दादाश्री : तो फिर उसे दुःख कहेंगे ही कैसे? यह तो बिना दुःख के दुःख गाते रहते हैं। उसके बाद फिर उससे हार्ट अटैक आता है, *अजंपा* (बेचैनी, अशांति, घबराहट) रहता है और खुद दुःख मानता है। जिसका उपाय नहीं, उसे दुःख ही नहीं कहा जा सकता। जिसके उपाय हों उसके तो उपाय करने चाहिए, लेकिन यदि उपाय हो ही नहीं तो वह दुःख है ही नहीं।

खुद को दुःख है ही नहीं। जबकि दुःख पड़ता है दूसरे पर, लेकिन समझ में नहीं आता इसलिए खुद, अपने आप पर दुःख ले लेता है। यदि तीन दिन खाने को नहीं मिले, पीने को नहीं मिले, तो उसे दुःख कहते हैं। खाने-पीने का सबकुछ अच्छी तरह मिलता है, फिर भी यह दूषम मन सभी दुःख इकट्ठे करता है और दुःख को स्टॉक करता है। इन्हें तो भला दुःख कहते होंगे?! दुःख तो किसे कहते हैं? कि खाने को नहीं मिले, कपड़े पहनने को नहीं मिलें, सोने को नहीं मिले, वे सब दुःख कहलाते हैं। ये सब मिल जाएँ तो फिर दुःख किसे कहेंगे? ये तो संसार में दूषम मन के कारण दुःख हैं, वह सुषम मन बन जाए, तब सुखी हो जाएँगे! जब मन बिगड़ जाता

है, तब आधि (मानसिक पीड़ा) को निमंत्रण देता है, नहीं होती फिर भी आधि को बुलाता है। अगर कभी दाढ़ दु:खे तो उसे दु:ख कहा जा सकता है। बाकी दु:ख तो है ही नहीं, लेकिन लोगों ने सारा *अजंपा* किया है।

पॉज़िटिव बुद्धिकला से छेदन, सर्व दु:खों का

प्रश्नकर्त्ता : दादा, इन भाई को व्यापार में बहुत बड़ा नुकसान हो गया है, उसका बहुत टेन्शन रहा करता है।

दादाश्री : यह जो सारा नुकसान होता है, वह फायदे में से होता है या घर (के पैसों) में से होता है?

प्रश्नकर्त्ता : फायदे में से होता है।

दादाश्री : तो फिर व्यर्थ में बेवजह क्या हाय, हाय करते हो?

प्रश्नकर्त्ता : और मानते ऐसा हैं कि जैसे घर में से नुकसान हो रहा हो।

दादाश्री : हाँ, ऐसा समझता है। वह इसी में। सस्ते ज़माने में यानी कि उन दिनों के पंद्रह हज़ार तो अभी के दो लाख जैसे थे। तो उस ज़माने में लगभग पंद्रह हज़ार का नुकसान, एक साहब ने काम रिजेक्ट किया, इसलिए हुआ था। तब हमारे भागीदार कहने लगे, 'अरे! यह तो पंद्रह हज़ार रुपये पानी में गए।' वे बहुत डिप्रेशन में आ गए। मैंने कहा, ''ऐसा क्यों कर रहे हो? हम घर से जो लेकर आए थे उसमें से कुछ बचा है या नहीं?'' 'नहीं, ऐसा तो बहुत है।' तब मैंने कहा, 'छोड़ो न भाई। बहुत हैं, उसमें से माइनस कर देना।' घर से लेकर क्या आए थे? कुछ भी नहीं? तब फिर यों ही बेकार की हाय-हाय!

इससे हमारे भागीदार को तुरंत ही संतोष हो गया। चेहरा बदल गया कहने लगे, 'हाँ, कुछ नहीं लाए थे, अपना तो यह है ही।' तब मैंने कहा, 'यह जो है उसमें से माइनस करो न, इतने।' बहुत हैं', कहने लगे। तब छोड़ो न! व्यर्थ ही यदि इसे साथ ले जाना होता तो कहते, तो वह पाई-पाई संभालते।

दादा का नाम लेने से सुधरे परिस्थिति

प्रश्नकर्त्ता : जीवन में जब आर्थिक परिस्थिति कमज़ोर हो तब क्या करना चाहिए?

दादाश्री : एक साल यदि बरसात नहीं आए तो किसान क्या कहते हैं कि, 'हमारी आर्थिक स्थिति खत्म हो गई।' ऐसा कहते हैं या नहीं? फिर वापस अगले साल बरसात आ जाए तब उसका सुधर जाता है। अत: जब आर्थिक स्थिति कमज़ोर हो तब धीरज रखना चाहिए। खर्च कम कर देना चाहिए। और किसी भी तरह से मेहनत व प्रयत्न बढ़ा देना चाहिए।

जब संयोग अच्छे नहीं होते तब लोग कमाने निकलते हैं। तब तो भक्ति करनी चाहिए। जब संयोग अच्छे नहीं हों तब क्या करना चाहिए? खुद के आत्मा का, सत्संग वगैरह, दिन भर वही करना चाहिए। खराब समय को अच्छे में लगा दो, समझ में आया न।

दो टाइम खाने का मिलता है या नहीं मिलता?

प्रश्नकर्त्ता : मिलता है।

दादाश्री : इस देह को ज़रूरत लायक ही भोजन देने की ज़रूरत है, उसे और कुछ की ज़रूरत नहीं है और वर्ना फिर रोज़ एक-एक घंटा ये त्रिमंत्र बोलना न! ये बोलने से आर्थिक स्थिति सुधर जाएगी। उसका उपाय करना चाहिए। उपाय करने से सुधर जाएगा। आपको यह उपाय अच्छा लगा?

दादा भगवान का नाम एक घंटा लें न तो पैसों के ढेर लग जाएँगे। लेकिन ऐसा करते नहीं हैं न! बाकी, हज़ारों लोगों को पैसे मिले। हज़ारों लोगों की अड़चनें गईं! 'दादा भगवान' का नाम लेने से यदि पैसे नहीं आये तो वे दादा ही नहीं है! लेकिन ये लोग इस तरह नाम लेते नहीं हैं न, वापस घर जाकर!

संयोगों में धीरज रखना, वह पुरुषार्थ

धीरज रखने से सब अपने आप सरल ही होता है! लेकिन यह तो, धीरज नहीं रहता और भागदौड़ कर देते हैं और सबकुछ बिगाड़ देते हैं।

प्रश्नकर्ता : धीरज नहीं रहता न, 'ऐसा करूँ, वैसा करूँ' ऐसा हो जाता है!

दादाश्री : हाँ, ऐसा कर डालूँ, वैसा कर डालूँ, उससे सारा उलझा देता है। फिर उसके कारण क्लेश और थकान का अनुभव करता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर जैसा आपने कहा वैसे धीरज रखें, तो क्या अपने आप ही व्यवस्था हो सकेगी?

दादाश्री : धीरज से ही सब होगा। शांति से, धीरज से सब आएगा, वे घर बैठे बुलाने आएँगे। और फिर ऐसा नहीं है कि हमें बाज़ार में ढूँढना पड़े। वर्ना मेहनत करके मर जाए, बुद्धि का उपयोग करके मर जाए फिर भी आज चार आने भी नहीं मिलेंगे। और यह तू अकेला थोड़े ही इसे पकड़ बैठा है? पूरी दुनिया लक्ष्मी के पीछे पड़ी है!

मेरा कहना है कि गंभीरता रखो, शांति रखो। क्योंकि जिस *पूरण-गलन* (चार्ज-डिस्चार्ज) के लिए लोग भाग-दौड़ कर रहे हैं और गुणाकार-भागाकार कर रहे हैं, वे अपने जन्म बिगाड़ रहे हैं, और बैंक बैलेन्स में कोई बदलाव हो सके, ऐसा नहीं है। वह नैचुरल है। नैचुरल में क्या कर सकते हैं? अत: आपका यह भय दूर कर देते हैं। हम 'जैसा है वैसा' बता देते हैं कि बढ़ना-घटना किसी के हाथ में नहीं है, वह नेचर के हाथ में है। बैंक में बढ़ जाना, वह भी नेचर के हाथ में है और बैंक में से घट जाना, वह भी नेचर के हाथ में है।

अत: यह सब नैचुरल होता रहता है, क्यों इसकी चिंता करते हो! 'डोन्ट वरी!!' और गुणाकार-भागाकार करना बंद कर दो न!

जब मुश्किल आ जाए तब उसका *निकाल* (निपटारा) कैसे करें, वह तो नहीं आता इसलिए निरे पाप ही बांध लेता है। उस समय यदि पाप न बंधे और टाइम निकाल लें तो समझना, वही धर्म है।

हमेशा सनराइज होना ही है, सनसेट होना ही है, ऐसा दुनिया का नियम है। तो ये कर्म के उदय हैं, उससे पैसे बढ़ते ही रहते हैं अपने आप। सभी तरफ का, गाड़ियाँ-वाड़ियाँ, मकान बढ़ते रहते हैं। लेकिन जब चेन्ज होता है, तब फिर बिखरता रहता है। पहले इकट्ठा होता रहता है, फिर बिखरता रहता है। बिखरते समय शांति रखना, वह सब से बड़ा पुरुषार्थ है!

विषमता में समता, वही लक्ष

मुश्किलें तो आती ही रहेंगी। मुश्किलों के बगैर तो यह टाइम बीते ऐसा नहीं है, इसे कहते हैं दूषमकाल! महादु:खपूर्वक समता रहे, ऐसा यह काल है, यानी नब्बे प्रतिशत विषमता ही रहती है। उसमें थोड़ी बहुत समता रखनी, वह कोई ऐसी-वैसी बात है? अभी तो यह विषमता का सागर है।

प्रश्नकर्ता : उसमें थोड़ी समता रह जाए, वह आश्चर्य है!

दादाश्री : हाँ, वह आश्चर्य है और वैसी समता रहे तो उसका आनंद हमें स्पष्ट पता चलेगा।

व्यवहार के *लक्ष* (जागृति) में समता बरते तो वह सब अहंकार के बढ़ने का कारण है। आत्मा का *लक्ष* बैठे बिना उसे समता नहीं कहा जा सकता इसलिए लोगों को यह समता रहती भी नहीं है।

जहाँ असफलता वहाँ ज्ञान की समझ

सफलता या असफलता किसके हाथ में?

प्रश्नकर्ता : मन में निश्चित किया होता है कि यह कार्य करना है और वह सफल नहीं हो रहा हो, फिर भी अंदर जो विलपावर है कि यह कार्य सफल होगा ही, तो क्या वह ठीक है?

दादाश्री : हाँ, वह ठीक है। यदि विलपावर होगी, तो वह काम होगा ही। और विलपावर टूट गई तो वह काम नहीं हो पाएगा। विलपावर पर से हम भविष्य बता सकते हैं कि यह काम होगा या नहीं होगा। अत: जिस काम के लिए विलपावर नहीं हो तो वह काम छोड़ देना चाहिए और विलपावर हो तो वह काम पकड़कर रखना चाहिए। वह कभी न कभी होगा ही! आपकी भावना और साथ में दुआ भी चाहिए, दोनों साथ में होंगे तो काम होगा।

प्रश्नकर्ता : दुआ विलपावर से आगे निकल जाती है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन दोनों साथ में चाहिए। विलपावर नहीं होगी तो दुआ कुछ भी काम नहीं करेगी। आपके विलपावर और 'यह' दुआ, दोनों मिल जाएँ तो काम सफल होगा। कभी फेल्यर होता ही नहीं।

प्रश्नकर्त्ता : वह किसके हाथ में है? फेल्यर (असफलता) या सक्सेस (सफलता) किसके हाथ में है?

दादाश्री : फेल्यर और सक्सेस पुण्य के अधीन है।

प्रश्नकर्ता : जो कार्य करते हैं उसमें विरोधी शक्ति आती है और उस कार्य को रोकती है, तो ऐसा क्यों होता है?

दादाश्री : जो हमें सही कार्य करने में रुकावट डालता है, उसे अंतराय कर्म कहते हैं। ऐसा है, अगर बाग में जाते-जाते ऊब जाए न, तो एक दिन मैं कह देता हूँ कि, 'इस बाग में कभी भी आने जैसा है ही नहीं।' और हमें यदि वहाँ पर जाना हो न, तो हमारा ही किया हुआ अतंराय वापस सामने आएगा, तो उस बाग में नहीं जा पाएँगे। ये जितने भी अंतराय हैं, वे सब अपने ही खड़े किए हुए हैं। बीच में और किसी का दखल नहीं है। किसी जीव में किसी जीव का दखल है ही नहीं, खुद की ही दखलों से यह सब खड़ा हो गया है। क्योंकि दखल की, कि अंतराय डला।

खुद ने यह भोगने के अंतराय बाँधे हैं। यदि वे अंतराय टूटें, तो काम हो जाए। लेकिन अंतराय टूटेंगे किस तरह? 'जाना है, लेकिन क्यों नहीं जा पाता' ऐसे ही सोचता रहे न, तो सभी अंतराय तोड़ देगा। क्योंकि विचारों से अंतराय पड़े है और विचार ही अंतराय को तोड़ते हैं। 'जाएँगे, नहीं जाएँगे तो क्या चला जाएगा?' ऐसे विचारों से अंतराय डलते हैं। और 'जाना ही है, क्यों नहीं जा सकता?' उन विचारों से अंतराय टूटते हैं।

भग्न अहंकार के सामने आत्मा की अनंत शक्ति

दो चीज़ें हैं जगत् में : अहम् को पोषण या भग्न। इस जगत् में इन सभी के अहम् का

पोषण होता है या वह भग्न होता है। दो के अलावा तीसरा कुछ नहीं होता।

प्रश्नकर्त्ता : जिसे भग्न अहंकार कहते हैं, वह किसे कहा जाता है?

दादाश्री : जिसे अहंकार भग्न कहा जाता है, वह क्रेक होता है।

प्रश्नकर्त्ता : वह किस तरह हो जाता है?

दादाश्री : जहाँ मान की आशा रखें और वहीं अपमान हो जाए, मान से संबंधित उसकी सभी आशाएँ टूट जाएँ तब फिर वह भग्न हो जाता है। जैसे कि ये प्रेम भग्न हो जाते हैं न, उसे हर कहीं प्रेम की बात के बजाय तिरस्कार ही मिलता रहता है, वह प्रेम भग्न हो जाता है। उसी प्रकार इसे मान मिलना तो कहाँ रहा लेकिन अपमान ही मिलता रहता है। फिर इंसान क्रेक हो जाता है। फिर वह जब बोलता है तो वाणी क्रेक ही निकलती है। उसकी बात सीधी नहीं होती, उसकी बात में सार ही नहीं होता।

प्रश्नकर्त्ता : वह जो अहंकार भग्न है, उसे नॉर्मलिटी में आने में बहुत मुश्किल होती है न?

दादाश्री : वह तो बहुत टाइम लेता है।

अहंकार भग्न हो जाए तो क्या करना चाहिए? बुरी तरह से अहंकार को तोड़ दे तो? आसपास में शस्त्रों से गहरे घाव लगाए, लेकिन आत्मा में अनंत शक्ति है, इसलिए, 'अनंत शक्ति वाला हूँ, तुझे जो करना हो वह कर न!' यों हठ लेकर बैठ जाना है। तप करना है। 'अनंत शक्ति वाला हूँ' तब फिर अपने आप धीरे-धीरे कम हो जाएँगे। और यहाँ भीड़ कम हुई तो फिर उसके बाद उसका बल टूट जाएगा। मेरी उपस्थिति में यह सब टूट जाएगा। शक्ति बहुत ज़बरदस्त है न! हमारी उपस्थिति में यह सब टूट जाएगा।

अहंकार भग्न बहुत सेन्सिटिव होता है

अब हमारा वह भतीजा इतने भग्न अहंकार वाला है कि पूरी ज़िंदगी पागलों की तरह ही रहा है! अब कौन से जन्म में वह अहंकार भग्न हुआ होगा और कौन से जन्म में उसका वेदन करेगा, वह तो भगवान जाने। ऐसे तो बहुत तरह के अहंकार भग्न लोग देखे हैं मैंने। भग्न अहंकार, भग्न प्रेम ऐसे बहुत तरह के भग्न! अहंकार भग्न व्यक्ति का कैसा होता है, कि अगर उसके पास पचास ही रुपये हों और आप कहो कि 'क्या आपसे बात हो सकती है? मुझे अभी ज़रा पैसों की परेशानी है'। तो वह किसी से पच्चीस-पाचस रुपये उधार लेकर आपको दे देगा, 'लो बड़े भाई', ऐसा करके।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दे देगा।

दादाश्री : उससे मिठास लगी न! शरीर में उसकी मिठास लगी इसलिए उसके एवज में उसकी वैल्यू चुका देते हैं। अहंकार भग्न व्यक्ति ऐसा होता है।

कोई प्रेम भग्न हुए हों और कोई अहंकार भग्न हो, उसके लिए उसे बहुत मार खानी पड़ती है। वह बहुत सेन्सिटिव होता है, हर बात में सेन्सिटिव। सेन्सिटिव व्यक्ति को सामने वाला कुछ शब्द बोल दे तो तुरंत ही इफेक्ट हो जाता है। शब्द तो ठंडक भी देते हैं और सुलगा भी देते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ कि शब्द तो रिकॉर्ड है।

वाणी जड़ है, फिर भी व्यवहार में अधिक इफेक्टिव तो वाणी ही है। उसी से तो यह जगत् कायम है। वाणी का स्वभाव ही इफेक्टिव है।

इफेक्टिव चीजें सभी निश्चेतन होती है। चेतन इफेक्टिव नहीं होता। यह जो विनाशी चीज़ होती है, वह चीज़ इफेक्टिव होती है। अपना 'ज्ञान'

मिलने के बाद चाहे कैसी भी वाणी हो तो वाणी इफेक्टिव नहीं होती। फिर भी अभी हो जाती है, उसका क्या कारण है? क्योंकि पहले की अवस्थाओं को भूले नहीं हैं। बाकी, इफेक्ट होता है, उसे आपने जाना कि सामने वाले की जो वाणी है, वह रिकॉर्ड स्वरूप है और वह 'चंदूभाई' से कह रहा है, 'आप से' नहीं कहता। इसलिए किसी भी तरह 'आप' पर असर नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : सब से ज़्यादा तो वाणी से ही आहत होते हैं न!

दादाश्री : लेकिन वह तो अपनी अज्ञानता की वजह से आहत होते हैं। क्योंकि वे 'चंदूभाई' को कहते हैं, इसलिए 'चंदूभाई' आहत होते हैं। लेकिन अब, 'आप' 'चंदूभाई' नहीं रहे, फिर 'आपको' कैसे आहत करेगी? अब, आपको 'चंदूभाई' से कह देना है कि 'चंदूभाई' देखो, आपका कोई दोष होगा तभी कह रहे हैं न! 'आप' अलग, 'चंदूभाई' अलग।

इस दुनिया में ज्ञानी को शब्द आहत नहीं करते। अज्ञानी को करते हैं। ज्ञानी को शब्द कैसे आहत कर सकते हैं? इसलिए आपकी तो सेफसाइड ही है न? शब्द तो 'हमें' आहत नहीं कर सकते न! फिर चाहे आप गाया ही करो न, अपने आप। आप थक जाओगे, लेकिन मैं नहीं थकूँगा। क्योंकि अहंकार के चले जाने के बाद एकदम निरंतर परमानंद जैसा रहता है हमें। यदि कोई गालियाँ दें, तो जब तक अहंकार है तब तक वह प्रतिकार करेगा है। लेकिन जिसमें अहंकार ही नहीं हो उसे? लड़ना रहा ही नहीं न!

दादा का मनोबल देखने से, विकास मनोबल का

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे काल बदलता जा रहा है, वैसे-वैसे दु:ख सहन करने की शक्ति भी कम होती जा रही है न?

दादाश्री : ऐसा नहीं है। दु:ख से काल को कुछ लेना-देना नहीं है। उसके लिए तो मनोबल चाहिए। हमें देखने से बहुत मनोबल उत्पन्न होता है और मनोबल होगा तभी काम होगा। कैसे भी दु:ख हों, फिर भी मनोबल वाला इंसान उन्हें पार कर देता है। 'अब, मेरा क्या होगा?' ऐसा वह नहीं बोलेगा।

लेकिन जगत् ने, जीव ने मनोबल देखा ही नहीं है! हमारे में तो ग़ज़ब का मनोबल है! लेकिन अगर वह देखे न (निरीक्षण करे), जितना वह देखेगा, उतनी ही उसमें शक्ति आएगी। मैं उस रूप हो गया हूँ और आप धीरे-धीरे उस रूप होते जा रहे हो। तो एक दिन उस रूप हो जाओगे। लेकिन आपको छोटा रास्ता मिल गया है और मुझे तो बहुत लंबा रास्ता मिला था।

आत्महत्या रोकने के लिए ज्ञान की समझ

हर जगह फँसाव! कहाँ जाए?

जिसका कोई उपाय नहीं, उसे क्या कहें? जिसका उपाय नहीं हो उसके पीछे रोना-धोना नहीं करते। यह अनिवार्य जगत् है। घर में पत्नी का क्लेश वाला स्वभाव पसंद नहीं हो, बड़े भाई का स्वभाव पसंद नहीं हो, इस तरफ पिताजी का स्वभाव पसंद नहीं हो, इस तरह के संग में मनुष्य फँस जाए तब भी रहना पड़ता है। कहाँ जाए पर? इस फँसाव से चिढ़ मचती है, लेकिन जाए कहाँ? चारों तरफ बाड़ है। समाज की बाड़ होती है। 'समाज मुझे क्या कहेगा?' सरकार की भी बाड़ें होती हैं। यदि परेशान होकर जलसमाधि लेने जुहू के किनारे जाए तो पुलिस वाले पकड़ेंगे। 'अरे भाई, मुझे आत्महत्या करने दे न चैन से, मरने दे न चैन से।' तब वह कहेगा, 'ना, मरने भी नहीं दिया जा सकता। यहाँ तो आत्महत्या करने के प्रयास का गुनाह किया इसलिए तुझे जेल में डालते

हैं।' मरने भी नहीं देते और जीने भी नहीं देते, इसका नाम संसार! ऐसा यह अनिवार्यता वाला जगत्! मरने भी नहीं दे और जीने भी नहीं दे। इसलिए रहो न चैन से!

इसलिए जैसे-तैसे करके 'एडजस्ट' होकर टाइम बिता देना चाहिए ताकि उधार चुक जाए। किसी का पच्चीस वर्ष का, किसी का पंद्रह वर्ष का, किसी का तीस वर्ष का, ज़बरदस्ती हमें उधार पूरा करना पड़ता है।

आत्महत्या करने से छुटकारा नहीं मिलता

प्रश्नकर्ता : मुझे आत्महत्या करने के खूब विचार आते हैं, तो क्या करूँ?

दादाश्री : आत्महत्या क्यों करेगा?

तुझे क्या दुःख आ पड़ा है कि आत्महत्या करनी है?

प्रश्नकर्ता : सामाजिक और आर्थिक, दो ही दुःख हैं। तबीयत अच्छी नहीं रहती।

दादाश्री : बच्चे हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बच्चे हैं।

दादाश्री : वे बच्चे जब बड़े होंगे तब तेरी सेवा करेंगे, ज़िंदा रह न चुपचाप! वहाँ पर कुछ नहीं मिलेगा, वहाँ तो वे प्रेत भी बेचारे बहुत दुःखी हो गए हैं! मुझे मिलते हैं कुछ प्रेत, जिन्होंने आत्महत्या की थी! बेचारों का शरीर नहीं होता, भूख लगे तब उन्हें किसी के शरीर में घुस जाना पड़ता है। यहाँ तो चैन से खाना, पीना और पत्नी के साथ घूमना न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन खाने-पीने के लिए आर्थिक परिस्थिति भी चाहिए न?

दादाश्री : अरे, ज़रा मेहनत कर। आज तुझे पूरा रास्ता बता देंगे। फिर धीरे-धीरे तेरा सभी कुछ सुधर जाएगा। एकदम से नहीं सुधरेगा, लेकिन सुधरेगा।

प्रश्नकर्ता : आत्महत्या के विचार क्यों आते होंगे?

दादाश्री : वह तो अंदर विकल्प खत्म हो जाते हैं, इसलिए। यह तो, विकल्प के आधार पर जी पाते हैं। विकल्प खत्म हो जाएँ, बाद में अब क्या करना, उसका कुछ 'दर्शन' नहीं दिखता। इसलिए फिर आत्महत्या करने के बारे में सोचता है। यानी ये विकल्प भी काम के ही हैं।

सहज रूप से विचार बंद हो जाएँ, तब ये सब उल्टे विचार आते हैं। जब विकल्प बंद हो जाएँ, तब सहज रूप से जो विचार आ रहे थे, वे भी बंद हो जाते हैं। घोर अँधेरा हो जाता है, फिर कुछ भी दिखाई नहीं देता! संकल्प अर्थात् 'मेरा' और विकल्प अर्थात् 'मैं,' जब वे दोनों बंद हो जाएँ, तब मर जाने के विचार आते हैं।

आत्महत्या के संस्कार, सात जन्मों तक

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा सुना है कि आत्महत्या के बाद सात जन्मों तक वैसा ही होता है। यह बात सच है?

दादाश्री : जो संस्कार पड़ते हैं, वे सात-आठ जन्मों के बाद जाते हैं, यानी ऐसा कोई गलत संस्कार मत पड़ने देना। गलत संस्कारों से दूर भागना। हाँ, यहाँ चाहे जितना दुःख हो, उसे सहन कर लेना, लेकिन गोली मत मारना। आत्महत्या मत करना। बड़ौदा शहर में आज से कुछ साल पहले सभी से कह दिया था कि आत्महत्या करने का मन हो, तब मुझे याद करना और मेरे पास आना। ऐसे लोग होते हैं न, जोखिम वाले लोग, उनसे कह रखा था। वे फिर मेरे पास आते थे और उन्हें समझा देता था। उसके बाद अगले दिन से आत्महत्या के विचार बंद हो जाते थे। सन् 1951

के बाद सभी को खबर दे दी कि जिस किसी को आत्महत्या करनी हो तो मुझसे मिलकर जाए और फिर करे। कोई आए कि मुझे आत्महत्या करनी है, तो उसे मैं समझा देता हूँ, आसपास के 'कॉज़ेज़', 'सर्कल' आत्महत्या करने जैसा है या नहीं, सबकुछ उसे समझा देता हूँ और उसे वापस मोड़ लेता हूँ।

आत्महत्या है पिछले कर्मों के प्रतिस्पंदनों का फल

प्रश्नकर्ता : कोई व्यक्ति आत्महत्या करे तो उसकी क्या गति होती है? भूतप्रेत बनता है?

दादाश्री : आत्महत्या करके बल्कि परेशानियाँ मोल लेता है। एक बार आत्महत्या करे तो उसके बाद कितने ही जन्मों तक उसके प्रतिस्पंदन आते रहते हैं! और ये जो आत्महत्या करते हैं न, वे कोई नये लोग नहीं हैं, पिछले जन्म में आत्महत्या की हुई होती है उसके प्रतिस्पंदन के कारण करते हैं। आज आत्महत्या करते हैं, वह तो पहले की हुई आत्महत्या के कर्म का फल आता है। इसलिए खुद अपने आप ही आत्महत्या करता है। ऐसे प्रतिस्पंदन डले हुए होते हैं कि वह वैसा ही करता हुआ आता है। इसलिए खुद अपने आप ही आत्महत्या करता है और आत्महत्या के बाद अवगति वाला जीव भी बन सकता है।

प्रश्नकर्ता : कोई आत्महत्या करके मर जाए तो क्या होता है?

दादाश्री : भले ही आत्महत्या करके मर जाए, लेकिन वापस फिर यहीं पर कर्ज़ चुकाने आना पड़ेगा। इंसान है तो उसके सिर पर दुःख तो आएँगे ही, लेकिन उसके लिए कहीं आत्महत्या करते हैं? आत्महत्या के फल बहुत कड़वे हैं। भगवान ने उसके लिए मना किया है, बहुत खराब फल आते हैं। आत्महत्या करने का तो विचार भी नहीं करना चाहिए। ऐसा जो कुछ भी कर्ज़ हो तो वह वापस दे देने की भावना करनी चाहिए, लेकिन आत्महत्या नहीं करनी चाहिए।

जहाँ अहंकार भग्न वहाँ आत्महत्या

प्रश्नकर्ता : वह जो उसे वृत्ति हुई, आत्महत्या करने की, उसका रूट (मूल) क्या है?

दादाश्री : आत्महत्या का रूट तो ऐसा होता है कि उसने किसी जन्म में आत्महत्या की हो तो उसके प्रतिस्पंदन सात जन्मों तक रहा करते हैं। जैसे एक गेंद डालें न हम, तीन फुट ऊपर से डालें तो दूसरी बार वापस अपने आप ढाई फुट पर उछलकर गिरती है, तीसरी बार दो फुट उछलकर वापस गिरती है, चौथी बार डेढ़ फुट उछलकर गिरती है। फिर एक फुट उछलकर गिरती है। उसकी गति का ऐसा नियम होता है। ऐसे कुदरत के भी नियम होते हैं। ये जो आत्महत्या करते हैं न, अब उसमें कम-ज़्यादा परिणामों से हमें आत्महत्या तो पूरी ही दिखाई देती है, लेकिन परिणाम कम प्रकार के होते हैं, कम होते-होते वे परिणाम खत्म हो जाते हैं।

कई आत्महत्या कर लेते हैं, वह भयंकर अहंकार है। अहंकार भग्न हो, किसी जगह से उसे ज़रा-सा भी पोषण न मिले, ऐसी स्थिति में आखिर आत्महत्या करते हैं। इससे वे भयंकर अधोगति बाँधते हैं। अहंकार जितना कम होता है, उतनी गति ऊँची होती है और अहंकार जितना ज़्यादा होता है, उतनी गति नीची होती है।

ममता के बंधन खुलते ही, छूट गए

एक बार मेरे पास एक आदमी आया और बहुत रोने लगा। कहने लगा, 'अब तो जीना बहुत भारी पड़ रहा है, आत्महत्या करने को मन करता है।' मुझे मालूम था, उसकी बीवी पंद्रह दिन पहले चल बसी थी और पीछे चार बच्चे छोड़ गई थी।

मैंने उसे पूछा, 'भैया, तुझे ब्याहे कितने साल हुए?' 'दस साल', वह बोला। तो दस साल पहले जब तूने उसे देखा नहीं था तब मर गई होती तो तू रोने बैठता क्या? उसने कहा, 'नहीं, तब क्यों रोता? मैं तो उसे पहचानता तक नहीं था तब!' फिर अब तू क्यों रोता है, यह मैं तुझे समझाता हूँ। देख! तू ब्याहने गया, बाजे-गाजे के साथ गया और जब लग्न मंडप में फेरे लेने लगा तब से तू 'यह मेरी पत्नी, यह मेरी पत्नी' ऐसे तू लपेटता गया। मंडप में उसे देखता गया, 'यह मेरी पत्नी' बोलता गया और ममता लपेटता गया। पत्नी यदि बहुत अच्छी हो तो रेशम का बंधन और बुरी हो तो सूत का बंधन। यदि तू इससे छूटना चाहता है तो जितने बंधन 'मेरी, मेरी' के बांधे, उतने ही 'नहीं है मेरी, नहीं है मेरी' बोलकर खोल दे, तभी ममता से तेरा छुटकारा होगा।

मेरी बात वह अच्छी तरह समझ गया और उसने तो 'नहीं है मेरी', 'नहीं है मेरी' का हैन्डल ऐसा घुमाया, ऐसा घुमाया कि सारी लपेटें (आँटियाँ) खुल गईं उसकी। फिर पंद्रह दिन के बाद आकर आँखों में आनंदाश्रु के साथ पाँव छूकर कहने लगा, 'दादाजी, आपने मुझे बचा लिया, मेरी सारी ममता के बंधनों को खोलने का मार्ग दिखलाया, उससे मैं छूट गया।

मेरी इस सत्य घटना को सुनकर, कितनों के बंधन खुल गए हैं।

किसी को आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। तो और क्या करें? वह इस देह की आत्महत्या अर्थात् सब से बड़ी आत्महत्या, फिर मन की आत्महत्या करते हैं। मन की आत्महत्या करने से इस संसार से मन उठ जाता है। ऐसा नहीं करना चाहिए। उसके कारण बच्चों से भी मन उठ जाता है, सभी से मन उठ जाता है। ऐसा नहीं करना चाहिए। हमें निभा लेना चाहिए। संसार का मतलब जैसे-तैसे करके निभाकर *निकाल* (निपटारा) कर लेने जैसा है। अभी कलियुग है, उसमें कोई क्या करे वहाँ ? 'देयर इज़ नो सेफसाइड एनीव्हेयर।'

भगवान कहते हैं कि यह सब नाटकीय है। तू उसमें नाटकीय मत हो जाना। मूल मन का झमेला है। इसलिए लोग मन के पीछे पड़े हैं लेकिन मन परेशान नहीं करता है, उसके पीछे माया है, वह परेशान करती है। माया जाए तो मन तो सुंदर एन्डलेस फिल्म है!

सभी मुश्किलें खत्म होती है, सत्संग से!

जब कर्मों के उदय बहुत भारी आए तब आपको समझ जाना चाहिए कि यह उदय भारी है, इसलिए शांत रहो। उदय भारी है इसलिए फिर उसे शांत (मंद) करके सत्संग में ही बैठे रहना चाहिए। ऐसा तो चलता ही रहता है! कर्म के उदय कैसे-कैसे आएँगे, वह कहा नहीं जा सकता!

यहाँ बैठे तब फिर कुछ न करो फिर भी अंदर परिवर्तन होता ही रहता है। क्योंकि सत्संग है। सत् अर्थात् आत्मा, उसका संग! यह प्रकट हो चुका सत्, तो उसके संग में बैठे, वही सब से अंतिम सत्संग कह जाता है। बाकी सब भी सत्संग तो हैं लेकिन अंतिम सत्संग नहीं। जैसे कि बॉम्बे सेन्ट्रल है, फिर यह गाड़ी आगे नहीं जाएगी!

प्रश्नकर्ता : विशेष रूप से जागृति बढ़ें, उसका उपाय क्या है?

दादाश्री : वह तो, इस सत्संग में पड़े रहना, वह।

प्रश्नकर्ता : आपके पास छः महीने बैठने से उसका स्थूल परिवर्तन होता है, फिर सूक्ष्म में परिवर्तन होता है, ऐसा कहना चाहते हैं?

दादाश्री : हाँ, सिर्फ बैठने से ही परिवर्तन होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : स्थूल परिवर्तन अर्थात् क्या?

दादाश्री : स्थूल परिवर्तन अर्थात् बाहरी भाग की उसकी सभी मुश्किलें खत्म हो गईं। सिर्फ अंदर की रहीं! फिर यदि दोबारा उतना ही सत्संग होता रहे तो अंदर की भी मुश्किलें समाप्त हो जाएँगी। दोनों खत्म हो गईं तो संपूर्ण हो गया। इसलिए यह परिचय रखना चाहिए, दो घंटे, तीन घंटे, पाँच घंटे जितने जमा किए उतना तो लाभ। ज्ञान मिलने के बाद लोग ऐसा समझ लेते हैं कि अब हमें कोई काम तो रहा ही नहीं! लेकिन परिवर्तन तो हुआ ही नहीं!

प्रश्नकर्ता : महात्माओं को पूर्ण पद की प्राप्ति के लिए क्या ग़रज़ रखनी चाहिए?

दादाश्री : जितना हो सके उतना दादा के पास रहकर जीवन बिताना है वही ग़रज़, और कोई ग़रज़ नहीं। रात-दिन, चाहे कहीं भी लेकिन दादा के पास ही रहना चाहिए। उनकी विसिनिटी में (उनकी दृष्टि में) ही रहना चाहिए।

मैं क्या कहता हूँ कि ऐसा प्राप्त होने के बाद इन कर्मों का *निकाल* कर दो झटपट। यह सब उधार चुका दो, नहीं तो आत्मा, शुद्धात्मा प्राप्त हुए बिना उधार चुक सके ऐसा कोई रास्ता था ही नहीं, यानी यह तो दिवालिया में से साहूकार होना है, यह उधार बहुत सारा है।

होम डिपार्टमेन्ट में नहीं छू सकता तूफान

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी तो कर्मों का तूफान जैसा आया है।

दादाश्री : तूफान आता है। फिर तूफान चला जाता है, उसके बाद सेफसाइड। तूफान तो सभी के यहाँ आता है। यह तो बीच में थोड़ा जब 'वह' तूफान आए तो दरवाज़े बंद करके बैठे रहना चाहिए। लेकिन दो घंटे बाद जब तूफान बंद हो जाए तब फिर दरवाज़े खोल देना। उसी तरह जब अपने यहाँ तूफान आए तो एक दिन-दो दिन हमें दरवाज़े बंद करके अंदर होम डिपार्टमेन्ट में बैठे रहना और बाहर चंचलता होती रहेगी, उसे देखते रहना है। ऐसा नहीं हो सकता?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् हमें धीरज रखना है, समता रखनी है।

दादाश्री : हमें तो उसे देखते रहना है और समभाव से *निकाल* करना है और वह फाइल कहलाती है, जो तूफान आया वह। समभाव से *निकाल* करना, तब फिर चला जाएगा। और हिसाब में जितने हैं उतने ही आएँगे, और अन्य नहीं आएँगे।

यह कोई गप्प थोड़े ही है यहाँ पर, यह तो वैज्ञानिक है! यहाँ तो किसी का दखल भी नहीं चलता। भगवान का भी दखल नहीं चलता इसमें। वैज्ञानिक थ्योरी में भगवान का दखल कैसे चलेगा?

हे 'दुःखों', गो टु दादा!

बहुत दुःख आ पड़े, तब आपको कहना चाहिए कि जाओ 'दादा' के पास।

प्रश्नकर्ता : परंतु दादा, इस तरह हमारा दुःख आपको सौंपा जा सकता है?

दादाश्री : हाँ, हाँ। दादा को ही सबकुछ दे देना और कहना कि 'जा, दादा के पास। यहाँ क्या है? इधर क्या है? सब दे दिया दादा को। अब इधर क्यों आया?'

प्रश्नकर्ता : सुख भी दे देना है?

दादाश्री : नहीं, सुख नहीं। सुख आपके पास रखना है। मुझे सुख का शौक नहीं है, इसलिए आपके पास रखना। आपसे दुःख यदि सहन नहीं हो तो मेरे पास भेज देना। दो-पाँच बार दुःख

का अपमान करो कि 'इधर क्यों आया है? दादा को दे दिया है।' तब फिर वह खड़ा नहीं रहेगा। इस *पुद्गल* का गुण कैसा है कि अपमान हो तो खड़ा नहीं रहता।

जो 'दादा भगवान' हैं, वे अचिंत्य चिंतामणि हैं। जैसा चिंतन करे वैसा हो जाता है। मुश्किल में उनका चिंतन करो तो मुश्किलें सब चली जाती हैं। जैसा चिंतन वैसा फल देते हैं। फिर हमें किसलिए घबराने की ज़रूरत है?

प्रश्नकर्ता : दादा, आप से जो माँगो वह मिलता है, ऐसा कहते हैं।

दादाश्री : जो माँगते हैं, वह मिलता है। यदि वह कहे कि 'मेरा दर्द दूर कर दो', तो उसे दूर कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो दूर कर दो न।

दादाश्री : नहीं, वह तो आपको कहना चाहिए। आप वहाँ घर पर बैठे-बैठे कहो तो भी हम तक पहुँच जाता है, यहाँ।

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान मेरा दुःख दूर कर दो, ऐसा कहना चाहिए।

हीराबा : हाँ, कहना चाहिए न!

दादाश्री : नहीं, वह तो पाँच-दस मिनट ऐसा बोलना चाहिए। सिर्फ बात करने से नहीं होता। इसीलिए तो लोग, 'दादा भगवान के असीम जय जयकार', बोलते हैं न! इसीलिए उनका सब दूर हो जाता है। सबकुछ होता है, जो माँगा हो वह मिलता है। इसीलिए तो सब बोलते हैं। इसलिए मैं भी बोलता हूँ न!

सांसारिक अड़चन आए तो 'चंदूभाई' से कहना कि, 'त्रिमंत्र बोलो'। फिर 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो' बोलो। तो सारी परेशानियाँ उनके अपने घर चली जाएँगी।

प्रश्नकर्ता : 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो', उसमें यदि दो मिनट एकाकार हो जाए तो कई दुःख कम हो जाएँ न?

दादाश्री : अनंत जन्मों के दुःख कम हो जाएँ। सिर्फ एकाकार ही नहीं बल्कि यह तो, अभेदता हो गई! संसार में व्यावहारिक अभेदता होती है स्त्री और पुरुष के बीच, लेकिन जब दोनों आपस में लड़ें तब? और दादाजी के साथ तो निश्चय की अभेदता उत्पन्न होती है। इसलिए दादाजी की जो मिल्कियत है, वही आपकी मिल्कियत हुई।

दादाजी की जंजीर खींचते ही, आए निबेड़ा

आपको जो दुःख है, तब हमें तो 'इस तरफ का' 'फोन' पकड़ा और 'इस तरफ' (देवी-देवताओं को) 'फोन' किया! हमें बीच में कुछ भी नहीं है। मात्र एक्सचेन्ज करना है। वर्ना हमें, ज्ञानी पुरुष को यह सब होता ही नहीं न! ज्ञानी पुरुष इसमें कुछ हाथ नहीं डालते। लेकिन इन सब के दुःख सुनने पड़े हैं न!

मैं इस दुनिया के दुःख लेने आया हूँ। आपके सुख आपके पास ही रहने दो। आपके दुःख मुझे सौंप दो और यदि आपको विश्वास हो तो वे आपके पास नहीं आएँगे। मुझे सौंपने के बाद आपका विश्वास टूटेगा तो आपके पास वापस आएँगे। इसलिए आपको कुछ दुःख हों, तो मुझे कहना कि, 'दादा, मुझे इतने दुःख हैं, वे मैं आपको सौंप देता हूँ।' वे मैं ले लूँ तो निबेड़ा आए, नहीं तो निबेड़ा कैसे आएगा?

'दादा' की कृपा से तो सब कुछ मिलता है। उसका क्या कारण है? उनकी कृपा से सभी

अंतराय टूट जाते हैं। 'दादा' की कृपा तो मन के रोग और वाणी के रोग, देह के रोग, सभी प्रकार के दु:खों के अंतराय को तोड़ देती है। यहाँ संसार के सर्व दु:ख दूर हो जाते हैं।

जो 'दादा की ज़ंजीर' खींचेगा, उसका काम हो जाएगा। क्योंकि वीतराग कभी किसी काल में होते ही नहीं है न! और इस काल में पूर्ण वीतराग नहीं हो सकते, लेकिन तमाम जीवों के लिए हम तो संपूर्ण वीतराग ही हैं।

किसी जगह पर 'हारें' नहीं, वे ही वीतराग! शायद कभी देह हार जाए, मन हार जाए, वाणी हार जाए पर वे खुद नहीं हारते। वीतराग कैसे सयाने होते हैं! वीतरागों का धर्म तो सैद्धांतिक है, अर्थात् नकद फल मिलता है। मोक्ष का नकद फल मिलता है! जो मोक्षदाता भगवान हैं, वे निष्पक्षपाती हैं। वीतराग भगवान भीतर हैं, वे निष्पक्षपाती हैं।

अक्रम द्वारा पॉज़िटिव की राह पर

मूल भगवान महावीर के समय से चला आया है कि पॉज़िटिव वाले मोक्ष में चले जाते हैं और नेगेटिव वाले बिल्कुल उल्टे रास्ते चले जाते हैं। अत: हमें जीवन में एक प्रिन्सिपल (सिद्धांत) रखना चाहिए। हमेशा पॉज़िटिव रहना, नेगेटिव के पक्ष में कभी भी नहीं बैठना। यदि सामने से नेगेटिव आए तो वहाँ पर मौन हो जाना।

कई साल गुज़र गए हैं, किंतु मेरा मन ज़रा सा भी नेगेटिव नहीं हुआ है। किसी भी संयोग में ज़रा सा भी नेगेटिव नहीं हुआ है। यदि लोगों का मन पॉज़िटिव हो जाए तो वे भगवान ही हो जाएँ! इसलिए मैं लोगों से कहता हूँ कि समभाव से निपटारा करके नेगेटिवनेस (नकारात्मकता) को छोड़ते जाइए। तो फिर पॉज़िटिव अपने आप रहेगा। व्यवहार में पॉज़िटिव और निश्चय में पॉज़िटिव भी नहीं और नेगेटिव भी नहीं।

पूरा संसार 'नेगेटिव' में भटक-भटककर मर गया। यह 'अक्रम' तो बढ़िया 'पॉज़िटिव' मार्ग है।

पॉज़िटिव यानी क्या? कुछ निकालना नहीं है, कुछ खिसकाना नहीं है, केवल लाना है।

पॉज़िटिव ले तो उसमें तो कोई हर्ज ही नहीं है। पॉज़िटिव लीजिए। मेरा सब पॉज़िटिव ही होता है न? हम सारा दिन बोला करते हैं, फिर चाहे कितनी भी टेप (वाणी) निकले, लेकिन सब पॉज़िटिव। हम दिन भर बोलते ही रहते हैं लेकिन कुछ भी नेगेटिव नहीं। नेगेटिव विचार नहीं, नेगेटिव वर्तन नहीं।

हमारा सिद्धांत क्या है? पॉज़िटिव। नेगेटिव नहीं। कोई तलवार लेकर आए तब यदि अपने हाथ में तलवार हो तो नीचे रख देनी है। अपना तो पॉज़िटिव। कतलखाना तो है लेकिन यह अहिंसक कतलखाना है! जीवहिंसा नहीं होती। सभी भ्रष्टाचारी गुण कतल हो जाते हैं और सदाचारी गुण उत्पन्न होते हैं। बाहर के सभी गुण बदल जाते हैं।

ज्ञान की समझ से दु:ख रहता ही नहीं

ज्ञानी तो बहुत समझदार होते हैं, उन्होंने सब तरह से हिसाब निकाल लिए होते हैं। ऐसा काल आता है तो क्या उसमें उन्हें दु:ख नहीं आते होंगे? आते हैं। लेकिन सेटिंग करके रखते हैं। पोस्ट ऑफिस में सोर्टिंग के खाने होते हैं न? यह नडियाद का खाना, यह सूरत का खाना, वैसे ही ज्ञानी ऐसी व्यवस्था करके चैन से सो जाते हैं कि यह व्यापार का खाना, यह समाज का खाना, यह ऑफिस का खाना।

हम हर एक बात का पृथक्करण कर देते हैं। व्यापार में नुकसान हो तो कहते हैं कि व्यापार को नुकसान हुआ। क्योंकि हम लोग फायदे-नुकसान के मालिक नहीं हैं, तब फिर नुकसान

हम किसलिए सिर पर लें? हमें फायदा-नुकसान स्पर्श नहीं करते। और यदि नुकसान हुआ और इन्कम टैक्स वाला आए तो व्यापार से कह देते हैं कि, 'हे व्यापार, तेरे पास चुकाया जा सके उतना हो तो इन्हें चुका दे, तुझे चुकाना है।'

हमारे कान्ट्रैक्ट के काम में समाचार आए कि पाँच सौ टन लोहा समुद्र में डूब गया तो पहले हम पूछते हैं कि, 'अपना कोई आदमी मर तो नहीं गया न?' मरते तो सब खुद के उदय से हैं, लेकिन अपने निमित्त से नहीं होना चाहिए।

जिसका जिस खाते का हो, उस खाते में रख देना चाहिए। जो शरीर को स्पर्श करता है, उतना ही झंझट है। फादर को हुआ हो तो हमें वह सिर पर नहीं लेना है। फिर भी खोज-खबर रखनी चाहिए कि क्या हुआ? कहाँ चोट लगी? फिर सभी दवाइयाँ वगैरह सब तुरंत ही ले आनी चाहिए, लेकिन ड्रामेटिक। यदि ड्रामेटिक नहीं होता तो बाप मरे, तब बेटे को भी साथ में जाना ही चाहिए न? ये मरते समय ड्रामा और जब चोट लगे उसमें 'ड्रामा' नहीं, ऐसा कैसे चलेगा?

हमें या किसी और को नहीं लगे तो अच्छा। अगर किसी को लग जाए तो 'कोई मरा तो नहीं है, इसलिए अच्छा हुआ,' इस तरह समझ का अवलंबन लेना चाहिए।

'ज्ञानी पुरुष' किसलिए हमेशा आनंद में रहते हैं? क्योंकि सभी सेटिंग करनी आती है और वही आपको सिखलाते हैं।

दर्पण में यदि पहाड़ दिखाई दे तो क्या उससे दर्पण को वज़न महसूस होगा? उसी प्रकार से ज्ञानियों पर सांसारिक अवस्था का कोई असर नहीं होता।

स्वरूप का ज्ञान मिलने के बाद बिल्कुल भी दु:ख नहीं रहता, ऐसा है!

हिम्मते मर्दां तो मददे दादा!

यह तो क्रियाकारी ज्ञान है! यह तो अक्रम विज्ञान है और यह निमित्त ही अलग प्रकार का है! बहुत बदलाव आ गया है, वह सब देखो न! ये सारे बदलाव आए हैं न?

प्रश्नकर्ता : दादा की दुआ से अंतिम समय वालों में भी बल आ जाता है। यानी कि अच्छा परिवर्तन हो जाता है। ऐसा किस कारण से?

दादाश्री : हाँ। सब बदल जाता है। यह विज्ञान ही ऐसा है। विज्ञान का बल ऐसा है। सभी अंधकार में ठोकरें खाते-खाते चल रहे थे और किसी ने टॉर्च की लाइट की तो सभी को ठोकर लगनी बंद हो गई। ऐसा है यह विज्ञान!

प्रश्नकर्ता : बहुत 'अटैक' आ जाए तो हिल जाता है।

दादाश्री : इसी को कहते हैं कि अपना निश्चय कच्चा है। निश्चय कच्चा नहीं पड़े, यही हमें देखना है। 'अटैक' तो, संयोग होता है इसलिए आता है। यदि गंध आए तो उसका असर हुए बिना रहता नहीं है न? इसलिए अपना निश्चय होना चाहिए कि मुझे उसे छूने नहीं देना है। निश्चय होगा तो कुछ नहीं होगा। जहाँ निश्चय है, वहाँ सबकुछ है। यहाँ पुरुषार्थ का बल है। आत्मा होने के बाद पुरुषार्थ हुआ, उसका यह बल है। वह बहुत ग़ज़ब का बल है। फिर भी हम क्या कहते हैं कि अपने में जो कमज़ोरी है उसे जानो, लेकिन उसके सामने शूरवीरता रहनी चाहिए, तो कभी न कभी वह कमज़ोरी जाएगी। शूरवीरता होगी तो एक दिन जीत जाओगे, लेकिन खुद को निरंतर चुभना चाहिए कि यह गलत है।

मुसलमानों में भी ज्ञान के बगैर भी इतना ज़ोर तो लगाते हैं कि, 'अरे, यार जाने दे, हिम्मते

मर्दां तो मददे खुदा' जबकि हमारे पास तो ज्ञान है, तो क्या फिर समझ में नहीं आना चाहिए? 'हिम्मते मर्दां तो मददे खुदा' अगर ऐसा बोले न, तो शूरवीरता आ जाती है उसमें तो। अपना तो यह विज्ञान है। विज्ञानी में हिम्मत नहीं हो, ऐसा हो ही कैसे सकता है? हमें तो इतना कहन वाला भी कोई नहीं मिला था। आप तो बड़े पुण्यशाली हो कि आपको तो ज्ञानी पुरुष मिले हैं।

अहो! कारुण्यता ज्ञानी की

मैं कहता हूँ न, कि भैया, मैं तो सत्ताईस सालों से (1958 में आत्मज्ञान होने के बाद) मुक्त ही हूँ, बिना किसी टेन्शन के। अर्थात् टेन्शन हुआ करता था 'ए.एम.पटेल को', मुझे थोड़े ही कुछ होता था। लेकिन 'ए.एम.पटेल' को भी जब तक टेन्शन रहता है, तब तक हमारे लिए बोझ ही है न! वह जब खत्म होगा तब हम समझें कि हम मुक्त हुए और फिर भी जब तक यह शरीर है वहाँ तक बंधन है। लेकिन अब उसके लिए भी हमें कोई आपत्ति नहीं है। दो अवतार ज़्यादा होने पर भी हमें आपत्ति नहीं है। हमारा लक्ष्य क्या है कि, 'यह जो सुख मैंने पाया है वही सुख सारी दुनिया को मिले'।

अपने सत्संग का हेतु क्या है? जगत् कल्याण करने का हेतु है। यह भावना कोई बेकार नहीं जाती। हम क्या कहते हैं कि सर्व दु:खों का क्षय करो। ये दु:ख हमसे देखे नहीं जाते। फिर भी हम में 'इमोशनल'पन नहीं होता है, साथ ही उतने ही वीतराग भी हैं। इसके बावजूद सामने वाले के दु:ख हमसे सहन नहीं हो पाते, क्योंकि हम हमारी सहनशक्ति जानते हैं। हमसे कैसा दु:ख सहन हो पाता था वह जानते हैं न, तो लोग ऐसा कैसे सहन कर पाते होंगे, उसका हमें पता है और वही कारुण्यता है हमारी!

सफोकेशन के समय बुलवाओ ज्ञान वाक्य

खुद परमात्मा है और छुपकर कब तक रहना है? खुद के घर में ही भरपूर माल है, और वह माल अनंत ज्ञान-दर्शन-शक्ति, अनंत सुख खुद के घर में है फिर भी वह उसका उपयोग न करें तो किसका दोष? भरा हुआ माल तो फल देकर चला जाएगा। लेकिन यदि ज्ञान है और सूझ है तो फिर सफोकेशन आया कहाँ से?

इसलिए जो उपाय बताए गए हैं वे सभी उपाय करना चाहिए, वे लिखे हुए हैं। उसमें से मैंने कौन से उपाय बताए हैं? उन्हें पढ़ना चाहिए!

प्रश्नकर्ता : जब बहुत सिर पर आ जाए, यों एकदम बहुत तूफान होने लगे, उस समय दादा भगवान का अक्रम ज्ञान हाज़िर हो जाता है। कुछ उलझन हो जाए, सूझ न पड़े, दखलंदाज़ी या ऐसा कुछ हो जाए, उस समय 'मैं अनंत दर्शन वाला हूँ, मैं अनंत दर्शन वाला हूँ, मैं अनंत दर्शन वाला हूँ', ऐसा पाँच-पच्चीस बार बोलें तो तुरंत ही सूझ पड़ने लगती है कि इसका हल कैसे लाना है!

दादाश्री : हाँ, अतिशय उलझन में सहारा किसका? दर्शन का। 'मैं अनंत दर्शन वाला हूँ, मैं अनंत दर्शन वाला हूँ', पाँच-पच्चीस बार बोल देना, दादा को सामने रखकर, फोटो रखकर। इसलिए फिर तुरंत ही सूझ पड़ जाएगी, तुरंत ही।

जब उलझन हो तब 'अनंत दर्शन वाला हूँ, अनंत दर्शन वाला हूँ', बोलें तो सारी उलझनें निकल जाएँगी।

वारस अहो दादाना, शूरवीरता रेलावजो...

यह सुख ऐसा है जैसे आप गद्दी पर बैठे हों, फिर भी भोगना नहीं आए तब क्या हो? अस्सी रुपये मन के भाव वाले बासमती चावल में रेती डालते हैं। यदि दु:ख आए तो उसे ज़रा

कहना तो चाहिए न, 'यहाँ क्यों आए हो? हम तो दादा के हैं। आपको यहाँ नहीं आना है। आप जाओ दूसरी जगह। यहाँ कहाँ आए आप? आप घर भूल गए।' इतना उनसे कहें तो वे चले जाते हैं। यह तो आपने बिल्कुल अहिंसा की (!) दुःख आएँ तो उन्हें भी घुसने दें? उन्हें तो निकाल देना चाहिए, उसमें अहिंसा टूटती नहीं है। दुःख का अपमान करें तो वे चले जाते हैं। आप तो उसका अपमान भी नहीं करते। इतने अधिक अहिंसक नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दुःख को मनाएँ तो नहीं जाएगा?

दादाश्री : ना। उसे मनाना नहीं चाहिए। उसे पटाएँ तो वह पटाया जा सके, ऐसा नहीं है। उसे तो आँखें दिखानी पड़ती हैं। वह नपुंसक जाति है। यानी उस जाति का स्वभाव ही ऐसा है। उसे अटाने-पटाने जाएँ तो वह ज़्यादा तालियाँ बजाता है और अपने पास ही पास आता जाता है।

'वारस अहो महावीरना, शूरवीरता रेलावजो,
कायर बनो ना कोई दी, कष्टो सदा कंपावजो।'

आप घर में बैठे हों, और कष्ट आएँ, तो वे आपको देखकर काँप जाने चाहिए और समझें कि 'हम यहाँ कहाँ आ फँसे! हम घर भूल गए लगता है!' ये कष्ट आपके मालिक नहीं, वे तो नौकर हैं।

यदि कष्ट आपसे काँपे नहीं तो आप 'दादा के' कैसे? कष्ट से कहें कि, 'दो ही क्यों आए? पाँच होकर आओ। अब तुम्हारे सभी पेमेन्ट कर दूँगा।' कोई आपको गालियाँ दे तो अपना ज्ञान उसे क्या कहता है? ''वह तो 'तुझे' पहचानता ही नहीं।'' उल्टे 'तुझे' 'उसे' (चंदू से) कहना है कि 'भाई कोई भूल हुई होगी, इसीलिए गालियाँ दे गया। इसलिए शांति रखना।' इतना किया कि तेरा 'पेमेन्ट' हो गया!

दादा सदा उपस्थित, महात्माओं के रक्षण के लिए

'दादा, हमारे संसार का भार आपके सिर पर और आपकी पाँच आज्ञा हमारे सिर पर', आपको तो ऐसा बोलना चाहिए! जो दादा का हो वह मेरा हो। दादा के कहे अनुसार रहना चाहिए।

अब 'मेरा क्या होगा?' एक बार भी ऐसा विचार आए तो वह निराश्रित है। भगवान क्या कहते हैं? 'जब तक प्रकट के दर्शन नहीं किए, तब तक तुम निराश्रित हो, और प्रकट के दर्शन हो गए तो तुम आश्रित हो।' प्रकट के दर्शन हो जाने के बाद बाहर के या अंदर के, कैसे भी संयोग आने पर भी ऐसा नहीं होता, कि, 'मेरा क्या होगा?'

हमारा आसरा जिसने लिया, उसकी अनंत काल की निराश्रितता खत्म हो जाती है।

चाहे कैसे भी विपरीत संयोग क्यों न हों, अगर ज्ञानी पुरुष के आश्रित को 'मेरा क्या होगा', ऐसा नहीं होता। क्योंकि वहाँ 'हम' और 'हमारा ज्ञान', दोनों उपस्थिति हो ही जाते हैं और आपका हर तरह से रक्षण करते हैं!

- जय सच्चिदानंद

विशेष निवेदन

कोरोना वायरस महामारी की वर्तमान परिस्थिति में पूज्यश्री दीपकभाई की निश्रा में सभी कार्यक्रम तथा आप्तपुत्रों-आप्तपुत्रीओं के विविध सेन्टरो में आयोजित सभी कार्यक्रम विलंबित किए गए है। भविष्य में परिस्थिति सामान्य होने के बाद सरकार द्वारा धार्मिक कार्यक्रमों के लिए अनुमति देने के बाद कार्यक्रम आयोजित होंगे।

पूज्य नीरू माँ / पूज्य दीपक भाई को देखिए टी.वी. चैनल पर

भारत

- **'उड़ीसा प्लस' टीवी** पर हर रोज़ सुबह 7-30 से 8 (हिन्दी में)
- **'अरिहंत' चैनल** पर हर रोज़ सुबह 2-50 से 3-50, दोपहर 2-30 से 3, और रात 8 से 9 (गुजराती में)
- **'साधना'** पर हर रोज़ सुबह 7-30 से 8 तथा रात 9-30 से 10 (हिन्दी में) - **नया कार्यक्रम**
- **'दूरदर्शन'-मध्यप्रदेश (भोपाल)** पर हर रोज़ रात 10 से 11 (हिन्दी में)
- **'वालम' टीवी** पर हर रोज़ शाम 6 से 6-30 (गुजराती में) - **नया कार्यक्रम**

USA - Canada

- **'TV Asia'**- पर हर रोज़ सुबह 7:30 से 8 EST
- **'Rishtey'** पर हर रोज़ सुबह 7 से 7-30 तथा 8 से 8-30 EST (हिन्दी में)

U K

- **'वीनस'** टी.वी. पर हर रोज़ सुबह 8 से 9 GMT
- **'MA TV'** पर हर रोज़ शाम 5:30 से 6:30 GMT
- **'MA TV'** पर हर रोज़ रात 9-30 से 10-30 GMT (हिन्दी में)
- **'Rishtey'** पर हर रोज़ सुबह 7 से 7-30 Western European Time (6 to 6-30am GMT)

USA - UK - Africa - Australia

- **'आस्था'** पर सोम से शुक्र रात 10 से 10:30 (डिश टी.वी. चैनल **U.K.**-849, **U.S.A.**-719)

Australia

- **'Rishtey'** पर हर रोज़ सुबह 8 से 8-30 तथा दोपहर 1-30 से 2 (हिन्दी में)

Fiji - NZ - Singapore - SA - UAE

- **'Rishtey'** पर हर रोज़ सुबह 6 से 6-30 तथा 7-30 से 8 (हिन्दी में)

नोट : दूरदर्शन के विविध टी.वी. चैनलों पर प्रसारित होने वाले सत्संग कार्यक्रम 1 अगस्त 2020 से बंद हो गए हैं। दूसरी चैनलों पर कुछ दिनों में सत्संग कार्यक्रम शुरू होंगे, जिनकी जानकारी आपको विविध माध्यम द्वारा दी जाएगी।

अगस्त 2020
वर्ष-15 अंक-10
अखंड क्रमांक - 178

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2018-2020
Valid up to 31-12-2020
LPWP Licence No. PMG/HQ/036/2018-2020
Valid up to 31-12-2020
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

दादा को सौंप देने से शीघ्र आएगा हल

आप शुद्धात्मा बन गए, लेकिन जब चित्तवृत्ति की निर्मलता रहती है तब उलझनें नहीं होतीं और सांसारिक कार्य सरल होते जाते हैं। यह तो, जब तक हाथ में पकड़े रहते हैं न, तभी तक मुश्किलें हैं। यदि दादा को सौंप दोगे तो मुश्किलें रहेंगी ही नहीं। फिर मुश्किलें आएँगी ही नहीं। मुश्किलें क्यों आएँगी ? हमें विचार आते ही वह काम होने लगता है। मुश्किलें आने से पहले ही खत्म हो जाएँगी। इतना बड़ा पत्थर लगना हो, उसके बजाय इतना सा पत्थर लगकर चला जाता है। यह विज्ञान बहुत ही अलग तरह का है!

- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Offset, B - 99, GIDC, Sector - 25, Gandhinagar - 382025.